हक़ीक़त बेनक़ाब

रामचन्द्र

श्री रामचन्द्र मिशन
शाहजहाँपुर, उ.प्र. (भारत)

प्रथम संस्करण-१९९५—११०० प्रतियां

मूल्य-60/-

प्रकाशक:
श्री रामचन्द्र मिशन,
प्रकाशन विभाग,
शाहजहाँपुर, उ.प्र. (भारत)

मुद्रक:
वैरा प्रिंटर्स, B-165, पाण्डव नगर, दिल्ली-92 द्वारा मुद्रित

प्राक्कथन

मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे यह सुअवसर मिला है कि मैं इस पुस्तक ''**हक़ीक़त बेनक़ाब**'' के बारे में कुछ पंक्तियाँ लिखूँ, परन्तु कुछ कहने से पहले हमारे सद्गुरु महात्मा रामचन्द्र जी के बारे में, मैं चन्द शब्द कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ। हमारे सद्गुरु हालांकि शाही ख़ानदान में पैदा हुए थे, परन्तु उनका अधिकतर समय जनता की सेवा व उन के कल्याणकारी कार्यों को करने में ही व्यतीत हुआ। उनकी सादगी के कारण लोगों ने उन्हें ग़लत समझा, और उनकी असली योग्यता का अनुमान न लगा सके। सद्गुरु ने अपने जीवन काल में ही आध्यत्मिकता तथा साक्षात्कार के बारे में सब कुछ कह दिया था, परन्तु कोई भी अपने आप को उन के योग्य पात्र साबित न कर सका।

वह ''बेहतरीन मालिकों में से एक थे'', तथा स्नेहपूर्वक बाबू जी महाराज के नाम से जाने जाते थे, परन्तु लोगों ने उन्हें केवल एक साधारण लिपिक ही समझा और अपनी महत्ता का प्रदर्शन करने के लिये शेख़ियाँ बघारीं उन्होंने इन सब की परवाह नहीं की क्यों कि उनका कार्य भिन्न प्रकार का था, यानी लोगों को आत्म-साक्षात्कार की स्थिति तक लाना। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि हर शख़्स इस बात का ढोंग करता है कि केवल वह ही ऐसा है जो उनके चरण-चिन्हों का अनुसरण करता है, जिससे साधारण लोगों के मन में यह धारणा पैदा होती है कि उन्हें वरिष्ठ या अग्रज माना जाए। इसी सिलसिले ने उनकी आध्यात्मिक उन्नति को ठप कर दिया है। हमारे सद्गुरु की सादगी एवं कार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि केवल वह ही अकेले ''विशिष्ट व्यक्ति (Special Personality) थे और कोई अन्य नहीं। हममें से कितने लोग इस तथ्य की जानकारी रखते हैं, इस का उत्तर प्रत्येक को स्वयं देना होगा।

वह राय बहादुर बद्री प्रसाद जी के सुपुत्र, और शाहजहाँपुर के एक दीवान के पौत्र थे। उनके पूर्वज मुग़ल शहँशाह अकबर के साम्राज्य में मीर मुन्शी थे, जोकि प्रधान मन्त्री के पद के बराबर था, किन्तु उन्होंने ख्याति अर्जित करने के लिए कभी उन के नाम का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा में व्यतीत कर दिया। उन के विनम्र शब्द अभी

तक मुझे याद हैं, जब लोग उनसे पूछते थे कि ''क्या आप गुरु हैं'' तो वह कहते थे कि ''आप मुझे अपना सेवक समझें'' ।

इस पुस्तक के लेखक महात्मा रामचन्द्र जी, श्री रामचन्द्र मिशन के संस्थापक अध्यक्ष हैं और सहज मार्ग पद्धति जो राजयोग की एक पद्धति है, के बानी उन्होंने पतञ्जलि ऋषि की वैदिक पद्धति का सुधार किया है । यह पद्धति किसी जाति, धर्म, रंग, मत-सिद्धांत लिंग या वर्ण पर आधारित नहीं है और ब्रह्म-साक्षात्कार का सब से तीव्रगामी रास्ता है ।

इस पुस्तक का संकलन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज द्वारा, उनके जीवन काल में दिए गए संदेशों अथवा उनके अभ्यासियों को लिखे गए पत्रों में से एक अभ्यासी, श्री मनोहर लाल सक्सेना द्वारा किया गया है, जो कि महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के उत्कट अनुयायी हैं ।

पूज्य सद्‌गुरु के सन्देश, न सिर्फ़ सहज मार्ग पद्धति की ही व्याख्या करते हैं बल्कि जो लोग इससे बेहतर पद्धति की तलाश में हैं, उनकी भी आँखें खुल जायेंगी । यह पुस्तक भूत, वर्तमान और भविष्य की भी सूचना देती है । मैं अपने कर्तव्य से विमुख हो जाऊँगा यदि मैं श्री एम.एम. गुप्ता तथा श्रीमती अमिता कुमारी की मेहनतों का जिक्र न करूँ जिन्होंने इस पुस्तक का सम्पादन किया है । यह सभी पू०बाबूजी महाराज के आशीर्वाद के योग्य हैं ।

इस पुस्तक को पढ़ने की मैं सभी को सलाह देता हूँ और आशा करता हूँ कि रूहानी लाभ उठाने तथा दोषों को दूर करने में यह सहायक होगी ।

ता० 30.4.95
शाहजहाँपुर

उमेश चन्द्र,
अध्यक्ष,
श्री राम चन्द्र मिशन

प्रकाशकीय टिप्पणी

इस किताब के पृष्ठों को किसी प्रस्तावना या परिचय की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह अपना परिचय ख़ुद आप हैं ।

इस पुस्तक के उन्वान (शीर्षक) के बारे में यह अर्ज़ करना है कि इसे पू० बाबूजी महाराज ने ही दिया है । एक वाक़ेया है कि जुलाई १९८१ की एक तपती दोपहर को, पू० बाबूजी महाराज ने देहली के एक अभ्यासी भाई मदन मोहन गुप्त को, बज़ाते ख़ुद फ़रमाया था कि ''अगर कभी Reality at Dawn उर्दू में छपी तो उसका हैडिंग **हक़ीक़त बेनक़ाब** होगा''। अभी तक इस पुस्तक का उर्दू रूपान्तर नहीं छपा है और न ही निकट भविष्य में इस के छपने की उम्मीद है । लिहाज़ा श्री रामचन्द्र मिशन की गोल्डन जुबली के सुअवसर पर, बाबूजी साहब के लेखों एवं सन्देशों पर अधारित जो पुस्तक आप के हाथों में है, उस का उन्वान **हक़ीक़त बेनक़ाब** से बेहतर क्या होगा!

यह हक़ीक़त है कि इस पुस्तक के पृष्ठों में उन्होंने क़ुदरत के उन सरबस्ता राज़ों को इतने आसान पैराए में बेनक़ाब कर दिया है कि जिनका इन्कशाफ (प्रकट) जिज्ञासु पर सिर्फ़ ध्यान और अनुभव द्वारा ही मुम्किन है । यह जिज्ञासु (अभ्यासी) की अपनी इस्तैदाद (योग्यता) पर मुन्हसिर है कि इन पृष्ठों में क़लमबन्द सहज मार्ग के फ़ल्सफ़े को वह कितना अमली तर्जुबे में लाता है । जिस का नतीजा बिल-आख़िर मालिके कुल में जज़्ब (लय) होकर असलियत के रूबरू होना है । सच तो यह है कि हक़ीक़त तभी बेनक़ाब होती है जब जिज्ञासु मालिक के प्रति पूरी तौर पर समर्पित होता है, लेकिन समर्पण का ख़्याल नहीं रहता है । असल में जो कुछ उसने दिया है, उस का समर्पण क्या है ? समर्पण सिर्फ़ ''अहम'' का होता है जो अलग हो गया है । जब तक हम ''उस'' के ख़्याल में डूबे रहते हैं तब तक हमें अपने ''अहम'' का ख़्याल नहीं होता, और हम समर्पण की हालत में रहते हैं । जब हमारा ''अहम'' ''उस'' के ख़्याल से ज़रा बाहर आया तो समर्पण का ख़्याल आता है ।

इस किताब का संकलन, सीतापुर के भाई मनोहर लाल सक्सैना की मेहनतों का नतीजा है । **सहज मार्ग पत्रिका** की पुरानी प्रतियों में छपे पू०

बाबूजी महाराज के जो भी लेख व सन्देश मिल सके, उन्हें यकजा कर के उन्होंने मिशन की बड़ी सेवा की है। प्रकाशन विभाग उनका आभारी है और दुआगो है कि मालिक का फ़ैज़ और मेहरो करम उन्हें करवट-करवट नसीब हो। साथ ही यह भी दुआ है कि मालिक की याद हर लम्हा हर अभ्यासी के दिल में ताज़ा रहे।

शाहजहाँपुर,
रविवार, 30 अप्रैल 1995

प्रकाशन विभाग,
श्री रामचन्द्र मिशन

विषय सूची

	विषय	पृष्ठ
१.	शून्यता और उस से आगे	१
२.	सती और शिष्य	६
३.	वैराग्य का स्वरूप	१०
४.	ब्रह्म साक्षात्कार	१३
५.	साधना का मार्ग	१५
६.	साधना और कृपा	१७
७.	ओइम तत् सत्	२०
८.	चरम कोटि	२५
९.	साक्षात्कार	२८
१०.	चमत्कार की वास्तविकता	३०
११.	कर्तव्य	३३
१२.	उजाला और अंधेरा	३७
१३.	अमोघ मार्ग	३९
१४.	एकाग्रता	४२
१५.	मेरी बेचैनी	४५
१६.	हमारी वर्तमान स्थिति और हमारा कर्तव्य	४९
१७.	उपासना और प्रभाव	५१
१८.	उद्देश्य	५२
१९.	हम बनें कैसे	५४
२०.	संस्कार	५६
२१.	इरादा	५७
२२.	सहज मार्ग	५९
२३.	वेद की वैज्ञानिक व्याख्या	६२
२४.	प्रशिक्षक का उत्तरदायित्व	६७
२५.	अहंता क्षय का उपाय	७०
२६.	गुरु की शक्ल का ध्यान	७२
२७.	हृदय का विस्तार	७५

२८.	समुद्र खो बैठे	७७
२९.	दिल की बात	८१
३०.	प्रकृति में समरूपता	८३
३१.	सद्‌गुरु का संदेश	८५
३२.	शुभ संदेश	८८
३३.	दिव्य दृष्टि	९१
३४.	वास्तविक भक्ति	९४
३५.	एतक़ाद	९७
३६.	हमारी मंज़िल	१०१
३७.	लक्ष्य और साधन	१०५
३८.	कम सामान अधिक आराम	१०९
३९.	समर्थ सद्‌गुरु का सन्देश	११२
४०.	मेरी पद्धति और मेरा कार्य	११५
४१.	अध्यात्म के स्तर	११९
४२.	अभ्यासी का कर्तव्य	१२२
४३.	सफ़ाई	१२६
४४.	समर्पण और आध्यात्मिकता	१२८
४५.	ईश्वर	१३१
४६.	समर्थ सद्‌गुरु	१३३
४७.	ईश्वर प्राप्ति का सरलतम मार्ग	१३६
४८.	गुरु-भक्तिः प्रदर्शन और असलियत	१३८
४९.	गुरु और शिष्य का आदर्श	१४३
५०.	अमर विचार	१४७
५१.	समर्थ सद्‌गुरु की समुचित शागिर्दी	१४९
५२.	अमर विचार	१५२
५३.	होली	१५४
५४.	इल्म और अमल	१५६

शून्यता और उससे आगे

पूर्ण अभाव (Complete Negation) की हालत में मनुष्य शून्य (Vacuumise) हो जाता है । इस प्रकार कि इस समय तक कोई आला (Instrument) ईजाद (Invent) नहीं हुआ कि किसी चीज़ को पूर्णतः शून्य कर सके । वैज्ञानिक बताते हैं कि पूरी तौर से जब हवा आले के द्वारा निकाली जाती है, तो फिर भी कुछ बाक़ी रह जाती है । मेरा कहना यह है कि यदि कोई आला ईजाद हो जाय कि किसी कमरे या गोले में से हवा बिल्कुल निकाल सके, तो वहाँ जान ही जान रह जायेगी और इतना ज़बर्दस्त विध्वंसक अस्त्र (Destructive weapon) बन सकता है कि उससे ज़्यादा विध्वंसक अस्त्र आज तक ईजाद ही नहीं हुआ ।

अब हमें मनुष्य को ऐसा शून्य (Vacuum) बनाना है । मगर इतनी बात और है कि पूर्ण अभाव की जब भूली हुई दशा (Forgetful State) आती है, तब कहीं पूरी तौर पर Vacuum बनता है । और कहीं ऐसा बन गया तो वह एक विशाल बैटरी (Gigantic battery) बन जाता है, और उसकी ताक़त का कहीं ठिकाना नहीं, और यह चीज़ अवतारों में भी पाई नहीं जाती । उस के हाथ में है कि इससे चाहे निर्माण का काम (Constructive work) ले ले, चाहे विध्वंस का काम (Destructive work) ले ले; जिस तरफ़ उसकी इच्छा शक्ति (Will) बँध जाती है, ताक़त उसी तरफ़ काम करने लगती है ।

किन्तु भाई ईश्वर बड़ा होशियार है । ऐसे आदमी की इस हद तक इच्छा शक्ति (Will) बँधने ही नहीं देता । अगर कहीं अकस्मात् (Accidentally) बंध जाये, तो ऐसी हज़ारों दुनियाँ एक सेकेंड में छिन्न भिन्न कर सकता है । उसमें यह ताक़त पैदा हो जाती है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उसके हुक्म को टाल नहीं सकते । मगर यह बात अवश्य है कि ईश्वर जब एसी पहुँच (Approach) के लिये कोई आदमी ढूँढ़ता है, तो वह ऐसा ही ढूँढ़ता है कि जो ईश्वर की मर्ज़ी है वही काम ख़ुद बख़ुद करे । और मैं तो यह कहूँगा कि वह ऐसे आदमी को उसके गुरु के हाथ में दे देता है, और मिलता

भी उसी को है जिसने अपने आप को गुरु के हाथ में दे दिया है ।

इस शून्यता और अभाव की मैं कहाँ तक तारीफ़ करूँ । असल में यह चीज़ किसी बेहद (असीम) की इब्तिदा (प्रारम्भ) है । न मालूम अभी कितना और जाना है । हँसी उन लोगों पर आती है कि जो आध्यात्मिकता से कोसों दूर होकर आध्यत्मिकता का प्रचार प्लेटफ़ार्म पर करते हैं ।

मैं तुम को आज पूर्णता (Perfection) का अर्थ बतलाता हूँ । वैसे तो पूर्ण वास्तव में परमात्मा है, जिसको दूसरे शब्दों में ज़ात्त ही ज़ात कह सकते हैं, और इसी अर्थ में यह शब्द यहाँ पर इस्तेमाल किया है । मगर ख़ैर, जहाँ तक पूरे तौर पर बन्दे की पूर्णता कही जाती है, वह यह है कि प्रकृति(Nature) से जितनी बातें पैदा हुईं या उसमें मौजूद हैं, वह अज्ञानी (Ignorant) रहते हुए सबसे वाक़िफ़ (परिचित) हो । कोई ज्ञान या विद्या (Science) उससे न बचे । ज़रा कोई आँच दे दे और उससे वही बातें कुदरती तौर पर निकलने लगें जो वह जानना चाहता हो । यह कसौटी है पूर्ण आदमी की जाँच की ।

मेरा तरीक़ा यही है कि शुरू से मनुष्य शून्य बनता चले और ज़ाहिर भी है कि गुरु महाराज ने (कहाँ तक उनको धन्यवाद दिया जावे) जब मुझे बिल्कुल ऐसा ही बना दिया तो फिर वही बीज जाना भी चाहिए । अब अभ्यासी Negation और उसके बाद वाली हालत के क़ाबिल कब बनता है और कैसे उस हालत को पहुँचता है ? एक तो जवाब इस का यह है कि यदि गुरु Guide) इस हालत को पहुँचा हुआ है तो उस की मेहरबानी से वह पहुँच सकता है । अभ्यासी को यह चाहिये कि उसे यह हालत देने पर मजबूर कर दे । अब यह कैसे हो सकता है ? यह सब लोग जानते हैं, जिस के पास अक़्ल है । वैसे तो भाई मेरा हाल यह है कि मैंने बहुत कुछ approach एक साहब को उनसे डाट डपट पा कर दी थी और वह इसलिये कि मैं उनको ख़ुश रखना चाहता था, और वह उम्र में मुझसे बहुत बड़े भी थे । किन्तु ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं उनको केवल A, B, C, D ही बता पाया था कि उन का रंग बदलने लगा और उन्होंने ख़ुद ब ख़ुद ऐसी बातें पैदा कर लीं कि अपने आप इस क़दर नीचे आये कि किसी दीन के न रहे । मैं उन की अब भी इज़्ज़त करता हूँ और बड़ा समझता हूँ और मेरे दिल में उनसे इतनी मोहब्बत भी है जितनी कि एक इन्सान को दूसरे इन्सान से हो सकती है । और अब दूसरी कमज़ोरी यह है कि अभ्यासी को मैं ठहरा हुआ नहीं देख सकता, इसका फ़ायदा भी लोग उठा ले जाते हैं । और जल्दी तो मेरे

मिज़ाज में है ही । दूसरी चीज़ जो Negation और उसके ऊपर तक पहुँचा सकती है वह तड़प और बेक़रारी है और भक्ति और प्रेम तो होना ही चाहिये । अगर प्रेम पैदा हो जाता है तो बेचैनी होना ज़रूरी है ।

Negation का ख़ास तौर पर और सब आध्यात्मिक बातों का देने वाला तो ईश्वर ही है, यह तो सभी मानते हैं; मगर भाई मुझे तो जो कुछ मिला वह अपने गुरु महाराज से ही मिला । यह अवश्य है कि ईश्वर का मुझे बहुत ज़्यादा शुक्रिया अदा करना चाहिये इस बात का कि मेरी तबियत उसने ऐसी बना दी कि ऐसे बड़े महात्मा से मैं रुजू हुआ ।

ईश्वर से काम निकालने का तरीक़ा यही है जो हम अपने गुरु के साथ करते हैं उससे सीधे (Direct) प्रेम भी पैदा हो सकता है और यह बहुत अच्छी चीज़ है । किन्तु इस चीज़ के करने वाले बहुत कम हुए हैं । यद्यपि इससे अच्छा तरीक़ा कोई भी नहीं हो सकता । अभ्यासी को चाहिये कि अपनी लगन बढ़ाता जाये और अगर ज़्यादा न सही तो अपने Guide के प्रति इतना ही समर्पण (Submission) रखे, जितना स्कूल में बच्चे अपने उस्ताद के प्रति रखते हैं और भाई इतना कर्त्तव्य भी है । इस चीज़ से Guide को कुछ नहीं मिल जाता, बल्कि अभ्यासी को यह फ़ायदा होता है कि वह चीज़ आने के लिये पात्र बन जाता है । जो वास्तव में Guide है उसको अपनी इज़्ज़त या शोहरत की आशा नहीं होती । बल्कि मिसालें ऐसी भी मिलती हैं कुछ फ़क़ीरों की, जिन्होंने ज़ाहिरा बातें ऐसी भी की हैं जिससे जनता उनकी इज़्ज़त न करे और शिष्य भी छँट छटा कर ख़ास-ख़ास रह जावें । ऐसी एक मिसाल कबीर की भी मिलती है कि उन्होंने एक समय पर ऐसी ही किया था ।

यह तो Negation का हाल मैंने बताया है मगर Negation रहते हुऐ भी उसको अगर भूल जाये, यानि उसका एहसास न रहे, तब तो मैं यही कहूँगा कि उसमें एक क्षण में Spiritual Giant बनाने की तक़त पैदा होती है, और भाई मुझे कहीं इससे आगे चलने वाला पैदा कर दें । अफ़सोस है कि यह चीज़ें किसको दिखाऊँ । मुझे इस हद तक कोई हिम्मत नहीं दिलाता । ईश्वर करे यदि इससे ज़्यादा न सही, तो इतनी ही चीज़ मुझ से कोई ले ले ताकि मैं बहुत न सही, गुरु ऋण से कुछ थोड़ा ही उद्धार हो सकूँ । वाक़या यह है कि हाथ मल के रह जाता हूँ, और फ़िक्र यह है कि कहीं यह चीज़ मेरे साथ ही न चली जाये । इससे ज़्यादा न सही, कम से कम इतनी ही चीज़ पैदा कर लें जिससे दूसरों को इसी हद तक ले आवें । मैं तो इस चीज़ को देने के लिए यहाँ तक भरा भरा रहता हूँ कि कोई मुझसे अपने घर का कुल

काम जो नौकर करते हैं ले ले; और इसके बदले में मुझ से यह चीज़ें ले ले। मगर भाई मैं एक मज़मून के तरीक़े पर यह चीज़ें कह जाता हूँ । मुमकिन है इसी लिये दूसरों पर इसका कुछ असर न रहता हो ।

जैसा कि मैने ऊपर लिखा है कि ईश्वर इससे आगे चलने वाला पैदा कर दे तब तो मैं अपनी क़िस्मत की सराहना करूं, और ऐसी उजड़ी हुई बस्ती की सैर कराऊं जहाँ जनून का भी गुज़र नहीं । मगर भाई क्या करूँ इन्तिहा मुझ को कहीं मालूम नहीं पड़ती । इससे आगे कोई मुझसे सीखे जाय और मैं सिखाये जाऊं । भाई Negation भी हमारा लक्ष्य नहीं है । हमारा जो लक्ष्य है वहाँ के लिये हम इतना ही कह सकते हैं कि सिर्फ़ भूमा का ही गुज़र है, यानि यहाँ पर ज़ात ही ज़ात है । लोग मोक्ष (Liberation) के पीछे पड़ते हैं, और अच्छा है कि इससे वाक़ई आवा-गमन से छुटकारा मिल जाता है, और लोग इसी का उपदेश करते रहे । ज़रा कोई निगाह उठा कर तो देखे, तो पता चलेगा कि Liberation केवल उसका तलछट है । कभी कभी कुछ इशारा मेरी ज़बान से उस हालत का निकल भी गया किसी Polished Spiritualist (कलईदार आध्यात्मवादी) के सामने, तो नतीजा यही हुआ कि उसने मुझे नावाक़िफ़ (अज्ञानी) ही समझा । यही वजह होगी कि ऐसे रहस्य बतलाये नहीं जाते, और मैं तो भाई बतला देता हूँ । उन की राय मेरे बारे में बहुत कुछ सही है । अगर मुझ में वाक़फ़ियत ही होती, तो मुमकिन था कि इस हालत तक न पहुँच सकता, क्योंकि यहां पर नावाक़िफ़ों का ही गुज़र है । ज़रा सोचो तो सही; (मुमकिन है यह कुफ़्र हो) कि यह शब्द क्या ईश्वर की असल तारीफ़ में नहीं आता । लोग इसको सोचने ही क्यों लगे । उनके ख़्याल में तो क्षीर सागर और विष्णु भगवान और लक्ष्मी धूम रही है । हालाँकि वह यह नहीं समझे कि यह चीज़ कैसे आ गई । भाई यह सब दिल की हालतें हैं और इसी में विष्णु भगवान बेचारे मजबूरन रहते हैं । उनको कोई ऐसा नही मिला कि इस हालत से निकाले । बन्धन की चीज़ का ख़्याल ही बन्धन में एक कड़ी लगा देता है ।

दिल हमारा क्षीर सागर है । मगर उसमें वासना का साँप मौजूद है, जो हमारे असल को फन से घुमाये हुए है । लक्ष्मी भी मौजूद है । गोया यह दूसरी कड़ी है और हमको निजात इसलिये नहीं मिलती कि दूसरी ओर हममें कंचन कामिनी वृत्ति भी मौजूद है । पाँव दबाना विष्णु भगवान के माने यह हैं कि वह असर जिस पर सांप का फन है, उसकी दासी वाक़ई यह कंचन कामिनी वृत्ति है । अब उसमें जो लहरें या तरंगें हैं जो समुद्र में पैदा होती

हैं, हम अगर कहीं उनको दूर कर दें तो सतह बराबर हो जायेगी । फिर हम को मौक़ा मिलेगा कि इन बन्दिशों को काट सकें, क्योंकि हममें ताक़त भी आ जावेगी । असलियत जो दिल में छिपी हुई है, उसी को पौराणिक रूप से विष्णु क़रार दे दिया है । हम जब वासनाओं का साँप दूर कर देते हैं, तो विष्णु भगवान के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं, यानि हममें भी यह ताक़त आ जाती है कि हम दूसरों की रूहानी परवरिश (आध्यात्मिक पालन पोषण) कर सकें । अब चूंकि विष्णु का काम पालन पोषण है, लिहाज़ा उसके लिये लक्ष्मी या कंचन की भी ज़रूरत है । विष्णु भगवान की शक्ति भी आप पर रोशन हो गई है कि बेचारे पालन पोषण में दुःखी हैं । मैंने बहुत संक्षेप में लिखा है, क्योंकि दिमाग़ ज़्यादा काम नहीं देता । कभी ज़बानी समझ लेना, अगर चाहो । जो व्यक्ति विष्णु भगवान की पूजा करना चाहते हैं वह अपने दिल की तरफ़ रुजू हों बस यही उनकी पूजा होगी । जब उस चीज़ को तय कर लिया तो और चीज़ शुरू होने लगती है ।

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत !

❑❑❑

सती और शिष्य

ज़िला सीतापुर के एक गाँव में, एक सती का, हाल में वाक़या हुआ है । कुल वाक़यात मुझे सुनाये गये । यह मसला ऐसा है, जो अभी तक हल नहीं हुआ । अगर अपने आप का इससे मुक़ाबला करें, तो मैं समझता हूँ, कि मैंने, जाने ईश्वर से प्रेम किया या नहीं ? ऐसा वाक़या देखने को कहाँ मिले ? उस वक़्त अगर मैं मौज़ूद होता तो Observation करने पर मुमकिन है कि बहुत सी बातें मालूम हो जातीं । ऐसी स्त्रियों का ख़्याल यह है कि अपने शौहर का साथ नहीं छोड़तीं । दोनों का सम्बन्ध आगे ज़रूर मिलता होगा । अगर सती होना इसी लिये है कि साथ न छूटे, तो क़ाबिल गुरु के ऐसे शिष्य ज़रूर मिलेंगे कि जो जिस्म छोड़ने पर अपने गुरु के क़रीब पहुँच जाते हैं । यदि ऐसा कोई शिष्य है तो क्या ख़्याल कर लिया जावे कि वह सती के दर्जे पर है । यह आप तय करें । वैसे पुरुष Positive है और प्रकृति Negative, स्त्रियाँ प्रकृति कही गई हैं, और मनुष्य पुरुष । शिष्य Positive के ख़्याल में रहता है और Positive का रुझान उसी वक़्त होगा जब कोई ख़ुद Negative बन जावे । अपने आप को अगर ग़रीब और बेनवा समझ लिया जावे तो क्या उसकी गुरबत और बे सरोसामानी पर कोई चीज़, जिस को कि उसने असल मान रक्खा है उस तरफ़ न उतरेगी ? अगर उस पर शुरु हो गई तो भाई इसके माने यह होंगे कि Positive की हालत Negative में आकर उसको अपना सा बना रही है । अब आप यह कहेंगे कि इस लिहाज़ से स्त्री मर्द बन रही है । मगर भाई रुहानियत में मर्द उसको कहते हैं, जो मर्दियत से ख़ाली है । अब जब हमने उस को दिल दिया है जो कि मर्दियत से ख़ाली है तो वैसे ही हम भी बन रहे हैं । अब जो मर्दियत से ख़ाली है, उसको आप कहेंगे कि वह स्त्री है । मगर भाई स्त्री तो Negative होती है और Negative आप ख़ुद हैं । इसके माने यह हुऐ कि वह Negative भी नहीं है । तो अब मोहब्बत करने वाला न Negative है न Positive, न स्त्री है न पुरुष । आप जब Negative बने तो फ़ितरतन आपने उसको Positive समझ लिया और ज्यों ज्यों सम्बन्ध जुड़ता गया, और गहराई बढ़ती गई तो

नतीजा यह हुआ कि न आप Positive रहे न Negative, न स्त्री न पुरुष ।

"जब सिन्धु में बिन्दु समाय गयो : तब बिन्दु सिन्धु कहावत है।" तो भाई रुहानियत में तो यह हाल है कि ऐसे से मुहब्बत की जाती है जो न स्त्री है न पुरूष, और उसे वही चीज़ मिल जाती है । जब स्त्री अपने पति से इस भाव से मुहब्बत करती है और फिर यह शक्ति कि अपने जिस्म को जला देती है, आवाज़ भी नहीं आती । उनकी तमाम उम्र की रियाज़त अपने पति के लिये ही होती है । और ग़ालिबन ज़्यादातर यह पति पुरुष की हालत तक पहुँचे हुये नहीं होंगे । तो यह कैसे ख़्याल कर लिया जावे कि इन स्त्रियों का Liberation हो जाता होगा । शिष्य अगर अपनी रियाज़त से अपनी निगाह को गुरु की उस हालत पर नहीं ठहरा देता कि जो Positive है न Negative, तब तक उस का काम वह नहीं बनता जो कि उसका मक़सद है ।

मेरा विचार है कि जिन तत्वों से आदमी बना है, सती स्त्रियों को उस पर नियन्त्रण प्राप्त हो जाता होगा । इस लिये कि उनकी निगाह इन तत्वों के ऊपर होती है, तो सती स्त्रियों की निगाह उससे ऊपर जाना चाहिये । अगर गुरु की पहुँच उस आख़िरी हद तक नहीं है जहाँ Liberation लाज़मी है तो शिष्य अगर ऐसे गुरु की मुहब्बत में चकनाचूर रहता है तो उस हालत से ज़्यादा पहुँचना, जब तक कि Direct सम्बन्ध ईश्वर से पैदा न कर ले, नामुमकिन है । इस लिये Direct Love को ज़्यादा तरजीह दी जाती है ।

सब कुछ तो हो गया, सती की हालत भी बयान हुई, किन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि सती स्त्री बेचारी मोक्ष दशा को प्राप्त न कर सकी । वजह यह मालूम होती है कि स्त्री अपने पति को पति मान रही है और प्रकृति का नियम भी यही है कि पुरुष को अपने पति रूप में देखे और उस से Connected रहे । इसलिये कि वह उस के आधार पर है । जब यह हालत है तो स्त्री ने अपने ख़्याल को पुरुष की हद में ही क़ायम रखा है । वह उसी दायरे में मुहीत है । इसके आगे तवज्जह तब कर सकती है जब पुरुष अपने ख़्याल से महरूम हो गया हो । ऐसे महरूम होने वाले मनुष्य ज़रूर कम हुऐ होंगे । स्त्रियाँ, मुमकिन है ज़्यादा तादाद में हों । जब इन्सान अपने आपको स्वयं Negative नहीं बना पाता तो दूसरे से, जो उससे वाबिस्ता हो क्या उम्मीद की जाय कि वह अपने आप को उस के मुक़ाबले में negative बना सकेगा । मैं समझता हूँ कि इस लिहाज़ से ग़लती आदमियों की है, जिस के कारण सती स्त्रियाँ पैदा नहीं होतीं । आप हँसेंगे कि वाह हम अपने आप को Negative क्यों बनायें, पुरुष से स्त्री क्यों बनें ? गेहूँ से आटा क्यों बनें और कुचलने की तकलीफ़ क्यों बरदाश्त करें ?

जब तक कि गेहूँ पीसा नहीं जाता उसके ग़िलाफ़ और छुक्कल अलग नहीं होते, उसकी सफ़ेदी ऊपर नहीं झलकती और उसकी गाँठ नहीं खुलती, इसलिये उसका फैलाव नहीं होता। यह Negative बनना और कुछ नहीं है, केवल उस शक्ति को समाप्त कर देना है; जिसके द्वारा गेहूँ बना था और ठोस हालत में आ गया था। जब तक आप ठोस हालत लिये हुये हैं इफ़रादी (व्यक्तित्व) और अदद (सँख्या) की शक्ल मौजूद है और आप शुमार में भी आ रहे हैं। जब यह चीज़ समाप्त कर दी तो अब यह कोई नहीं बता सकता कि इसकी इन्तहाई शक्ल क्या थी। यानी उसकी ठोसता क्या थी ? अब तो भाई, शक्ल बिखरी हुई रह जाती है, जिसमें लुढ़कने की ताक़त आ जाती है। यह Negative बनना है। और जब आप अपनी इन्जमादी कैफ़ियत (ठोस हालत) खो बैठे तो पुरुष भी इसी निस्बत से अब ख़्याल में आने लगा, यानी Positiveness अब आप के ख़्याल से जाती रही। जब आपने अपने ज़र्रात (कण) छिन्न भिन्न कर डाले और इन बन्धनों की जकड़ दूर कर डाली जिन की वजह से उस Positive चीज़ की हालत भी Positive मालूम होती थी; यानी उसमें भी जकड़ महसूस होती थी, तो अब निस्बत पैदा होने लगी। जब आप में भी जकड़ का एहसास बाक़ी नहीं है और न वह शक्ति है कि वास्तव में जकड़ महसूस हो। अब एक सार हालत पैदा हो गई। अब न आप Negative रहे और न वह Positive। आपने अब इन दोनों बन्दिशों (बन्धनों) को भी यानी Positive और Negative को तोड़ डाला। अब कहिये आप क्या हो गये ?

अब बताइये कि सती स्त्री में और इस हालत में क्या फ़र्क़ है ? आप किसको बड़ा कहेंगे ? सती अनुसूया के क़िस्से में यह लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश उनकी परीक्षा के लिये आये और इस तरह से उनकी परीक्षा ली जो इनके शानशायां (बड़प्पन के अनुकूल) न थी। नतीजा यह हुआ कि वह इन तीनों को छोटा बच्चा बना कर पालने में झूलाने लगीं। पार्वती और लक्ष्मी जिन को यह ख़्याल था कि हम ज़्यादा सती औरतें हैं; अपने अपने पतियों को ढूँढ़ने आईं, देखा कि पालने में झूल रहे हैं। आगे क़िस्सा याद नहीं जो चाहे सो हुआ हो।

अनुसूया का यह क़िस्सा पेश नज़र करता हूँ मिसाल के तौर पर। भाई, हिन्दू फ़िलासफ़ी का अजीब हाल हुआ है कि जब नर का ज़िक्र हुआ तो मादा (स्त्री) पहले ख़्याल में आ गई। जब विष्णु ख़्याल में आये तो लक्ष्मी का होना भी ज़रूरी हो गया। नफ़्स परस्ती इस हद तक बढ़ी कि लोगों की ऊपर निगाह ही न रही। जब देखा तब नीचे को ही देखा। मन के ऊपर

की हालत को मन्द कर दिया । नीचे की हालत उस की खूब विकसित हुई । भाई, अगर बहुत उच्चतर दर्शन नफ़्स के बारे में बतलाया जाये तो आप चौंक पड़ेंगे और रामचन्द्र की कुल फ़िलासफ़ी को ग़लत कर देंगे । यह नफ़्स की हालत क्या है - यही Negative की हालत है । फ़र्क़ इतना है कि जब आप Negative की हालत रुहानियत में लेते हैं तो उसके चारों तरफ़ के दरवाज़े बन्द कर देते हैं । फिर धीरे धीरे उसका असली रूप आ जाता है । मगर इस को Non-entity (अनस्तित्व) की हालत कहीं न समझ जायें । यह बहुत ऊँची हालत है और इन सब का परिणाम है । इस चीज़ को लोग भूल गये और अपने रुख़ पर रास्ता अपना लिया । नतीजा यह हुआ कि हर क़िस्से में जोड़ा लगा दिया। हमारे यहाँ ऐसे क़िस्से भरे पड़े हैं कि जब तक Negative बात न आ जाय कोई धार्मिक क़िस्सा पूरा ही नहीं हुआ । अब लोगों ने यह ग़लती क्यों की है जिस तरफ़ उन की निगाह रही उसी का रंग और तलाज़मा बाँधने लगे । अब लोगों का, मुमकिन है यह ख़्याल हो गया है कि जब तक इन्सान का विवाह द्वारा Negative का मसला पूरा नहीं हो जाता तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती । Europe में तो भाई यह मसला ज़रूर ठीक ठीक उतर गया है । उनके दायरे के लिहाज़ से "No life without wife"। ईश्वर बचाये इस ख़्याल से हम लोगों को । और सुनो, रामायण की बात बताऊं कि जब रामचन्द्र जी ने शिव की स्थापना की तो रावण सीता को लाया ताकि अनुष्ठान पूरा हो जाये । और फिर वह उन को साथ ले गया । भला कौन सा कुदरती उसूल इस विषय में प्रतिरोधक होता था कि सीता जी को वहीं छीन लिया जाता । लोगों को यह पता भी नहीं कि वहाँ पर किसने स्थापना की थी । एक दैत्य था । उसने एक मूर्ति स्थापित कर दी थी । वह शिव जी का भक्त ज़रूर था और वह बुरे लोगों में भला आदमी था । रामचन्द्र जी ने रामेश्वरम में पुल बाँधा था ।

वास्तविकता यह है कि वह एक ज्वालामुखी का विस्फोट था, जो वहाँ बहुत दिनों से छिपी पड़ी थी । यह उसका अन्तिम विस्फोट था जिसके बाद वह बुझ गई । जब रामचन्द्रजी जंगल गये थे तो वह पुल बहुत कुछ पहले से ही बना था, पत्थरों और लावे पर कुछ पत्थर की पट्टियाँ रखने की आवश्यकता थी जो काम राम की सेना द्वारा पूरा हुआ ।

—एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

वैराग्य का स्वरूप

बात तो यह है कि सच्चे जिज्ञासु नहीं मिलते वर्ना मज़ा आ गया होता । और लोग रगड़ रगड़ा कर ऐसी हालत भी पैदा करना नहीं चाहते कि कुछ न कुछ बन कर ही रहें । हमें तो ऐसा लगता है कि बहुत सी बातें हमारे साथ ही जायेंगी । फिर भी बहुत कुछ ठूंस ठांस करता रहता हूँ । जब आदमी में किसी हालत का, जब वह पैदा होती है, एहसास होता है, तब उस को दूसरों का काम बनाने के लिये इस्तेमाल कर सकता है । इस क़दर हालतें मेरे एहसास में हैं, और इतने Points मेरे ख़्याल में हैं, और आगे रिसर्च भी होती जाती है । उनमें से एकाध Point भी लेने की कोई शक्ति नहीं रखता । और तबियत यह चाहती रहती है कि हर आदमी हर Point का मज़ा चखे । दूसरें मानों में, मैं इतना बेक़रार रहता हूँ, आला से आला विद्या देने के लिए, कि इस का अगर थोड़ा सा भी हिस्सा अभ्यासी अपने ज़िम्मे ले ले तो जाने क्या से क्या हो जावे । 'लाला जी' ने भी मुझ से कहा है कि "इस हद तक सीखने वाला मुश्किल से मिलेगा" । मगर ख़ैर, जितना भी जैसा मिल जाये । लोग कहते हैं कि एहसास नही होता । उनसे कोई यह तो पूछे कि तुमने कभी एहसास करने की कोशिश भी की, जो हालत पैदा हुई उसमें कभी घुसे भी ? अगर वह यह कहें कि इतना माद्दा नहीं कि एहसास कर सकें, तो वह बिल्कुल ग़लत है । माद्दा हर एक में है, और ब्रह्म विद्या में अक़्ल खुलने लगती है । मगर जब उस ताक़त को कोई दूसरी तरफ़ लगादे तो फिर क्या किया जावे ।

देखने में तो ऐसा आता है कि सोचने और अनुभव करने की जो सामर्थ्य पैदा होती है उसे लोग दुनिया की तरफ़ लगा देते हैं । नतीजा यह होता है कि जिस चीज़ से वैराग्य पैदा होना चाहिये, उसमें और राग पैदा हो जाता है । यह नुक़्स अभी लिखाते लिखाते मेरी समझ में आया और यह ठीक है । वाक़ई महात्माओं की यह राय ठीक थी कि जब जिज्ञासु अपने में वैराग पैदा कर लेता था, तब असल जौहर उस को दिया जाता था । लोग कुछ दिल से छोड़ना नहीं चाहते और कहने सुनने में आकर सिर्फ़ मेरे यहाँ सीखना

शुरू कर देते हैं । मैं भी यह समझ लेता हूँ कि भाई फ़ायदा कुछ न कुछ ज़रूर हो जायेगा, और अपने लिये उन पर मेहनत करना भी फ़र्ज़ समझ लेता हूँ, और मेरे लिये हुकुम भी ऐसा ही है ।

वैराग्य अभ्यासियों में ख़ुद ब ख़ुद पैदा हो गया होता और बड़ी आसानी से, अगर वह अपनी तवज्जह की डोर ईश्वर की तरफ़ पूरी तौर से लगा देते । मैं यह ज़रूर करता हूँ कि मन का रुख़ ईश्वर की तरफ़ कर देता हूँ ताकि उस तरफ़ लगा रहे । और वह लग भी जाता है । लोग क्या करते हैं कि उस को दुनियादारी की तरफ़ घसीटते हैं। और यह हो नहीं सकता; इतना मुझ को गुरु महाराज की कृपा से Confidence (विश्वास) है, कि जिस मन को ऊपर की तरफ़ लगा दिया फिर वह नीचे की तरफ़ नहीं उतर सकता । नतीजा मुमकिन है यह होता है कि उन लोगों को जो दुनियां के मामले में ज़्यादा दौड़ लगाते हैं, परेशानी का एहसास ज़्यादा होता हो । इसलिये कि मन ऊपर रहना चाहता है और उसको वह नीचे घसीटते हैं ।

अगर ईश्वर की तरफ़ इन्सान पूरे तौर से लग जाता है, तो फिर वैराग्य ही वैराग्य है, और कहीं किसी रूढ़ी सूरत पर कोई लग गया तो दुनियाँ से ही नहीं बल्कि अपने से भी वैराग्य हो जाता है । शरीर की चेतना तो जाती ही रहती है यह इसका एक अपना करिशमा है । आत्मा की चेतना जाने का भी नम्बर आ जाता है । फिर क्या है मुर्दा को नहलाने वाला जिधर चाहे उसे फेर दे । हालतें आगे ऐसी आती हैं कि उसको शब्द ज़ाहिर नहीं कर सकते ।

सीता ने एक तोता पाला, और वह उससे बहुत मोहब्बत करती थी, और राजा जनक सीता से मोहब्बत करते थे । नतीजा क्या हुआ कि राजा जनक तोते से मोहब्बत करने लगे । तोता दुखी होता था तो सीता को दुख होता था और जब सीता को दुख होता था तो राजा जनक को भी दुख होता था । अब देखो तो सही कि इतना बड़ा ऋषि दूसरे मानों में तोते से लगाव रखता था । हमसे अगर पूछो तो हम यही कहेंगे कि वह इन्सान ही नहीं जो दूसरे के दुख दर्द को देखकर दुखी न हो । महात्माओं को भाई जाने दो । उनमें तो ऐसे अव्वल दर्जे के बैरागी मिलते हैं कि कहते हैं कि माँ, बाप, पुत्र-परिवार, सब शत्रु के समान हैं । तो भाई मुझे तो कोई ऐसी महात्मागीरी दे तो सौ बार " लाहौल" पढ़ने के लिए तैयार हूँ । अब उन महात्माओं की तालीम पर ग़ौर करो कि कितने बड़े राग की तालीम देते हैं जिसका नतीजा सिवा तबाही के, और moral stamina (नैतिक, आन्तरिक बल) ख़राब कर

देने के और कुछ नहीं होता, हम शत्रु समझने की आदत डाल रहे हैं । हम जब यह आदत डाल रहे हैं तो मुमकिन है हमारे ख्यालात खुद ऐसे औज़ार बन जायें कि हमारे ख़ून से अपने आप को रंग लें ।

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत ।

□□□

ब्रह्म साक्षात्कार

जहाँ तक सुहानापन है वहाँ तक असल ब्रह्म नहीं कह सकते, इसलिये कि बहुत कुछ माया का लेसपोत सूक्ष्म हालत में मौजूद रहता है । मुझे तो ऐसी सूनी महफ़िल में तुम सब को ले जाना है; जहाँ कि सूनापन भी हज़ारों गुना भारी है और वाक़ई पूर्णता (Perfection) जो कि मनुष्य के लिए सम्भव है वही है । हमारे यहाँ इतनी ख़ूबी ज़रूर है कि Perfection (पूर्णता) सब चाहते हैं । मगर मेहनत और Devotion (भक्ति) के लिए उनको उनकी सुस्ती इजाज़त नहीं देती । मान लो कि ईश्वर इतनी कृपा भी करें कि बिना मेहनत उनको यह हालत कहीं मिल जावे, तो नतीजा क्या होगा ? यही कि मेरी शक्ल से बेज़ार हो जावेंगे, इसलिये कि इस हालत में मज़ा क्या बल्कि शुबह और गुमान तक नहीं । भाई मज़े की हालत मैं अपने ऊपर अक्सर तारी कर लेता था । अब मौजूदा हालत जो कुछ भी है बेमज़े की है । उससे एक सेकेन्ड भी हटने को जी नहीं चाहता । सो लोग मज़े की हालत लेते हुये जब बेमज़े की हालत में पहुँचेंगे, तब उनका यह हाल हो सकता है, जैसा कि मेरा, कि बेमज़े की हालत से हटने को जी नहीं चाहता । अगर कोई मुझसे यह कहे कि तुम अपनी जान दे दो या मौजूदा हालत से अलग हो जाओ तो जान की Sacrifice (कुर्बानी) मुझे दिल से क़बूल होगी । अब यह नहीं कहा जा सकता कि वह हालत क्या है ? शब्द नहीं, ज़ुबान नहीं कि उसको बयान कर सकूं ।

मैं निर्मलता (Purity) की हालत को भी बंधन कहता हूँ । जब Purity (शुद्धता) और Impurity (अशुद्धता) दोनों का एहसास ख़त्म हो जाये तब Reality (वास्तविकता) की शुरुआत समझना चाहिये और उसके आगे अनगिनत Stages जो गिनने में नहीं आतीं । मगर यह याद रहे कि Purity और Impurity मिटने का ख़्याल नहीं बांधना चाहिये कुदरती तौर पर जो हालत आती जाये उसे एहसास करते चलना चाहिये ।

अहं ब्रह्मास्मि की हालत हर पर्दे और हर स्थान पर महसूस होती है ।

जितनी ऊँची हालत होती जाती है उतने अच्छे रूप में यह दिखलाई देती है। इसको मैं क्या लिखूं ? मेरी मानेगा कौन ? अगर मैं ज़बान खोलूं तो वेदान्ती यही कहेंगे कि यह ग़लत कहता है। और संभव है कि यह वेद वाक्य के ख़िलाफ़ पडे। जब हमको अहं-ब्रह्मास्मि का भास होता है तो यह आवश्यक है कि किसी चीज़ से हम उसको differentiate (भेद करना) कर लेते हैं, गोया कोई चीज़ अभी ज़रूर ऐसी है जो Difference (भेद) का एहसास दिला रही है। यह तो रही फ़िलास्फ़ी और समझाने की बात। असलियत वहाँ है जहाँ यह भेद ख़त्म हो जाये और फिर न अहं ब्रह्मास्मि का एहसास रहे और न इसके विरूद्ध। अब भी भाई, कहने को तो Perfection (पूर्णता) हो गई, मगर नहीं मालूम अभी क्या क्या बाक़ी है। मैं तो यही कहूँगा कि यहां पहुंचने पर भी दिल्ली दूर रह जाती है। अब भाई बताओ मैं क्या लिखूँ ? इसके आगे भी कुछ न कुछ ज़रूर लिखा जा सकता है मगर कौन समझेगा और कौन मानेगा। ख़ैर एक बात में इससे आगे की भी लिखे देता हूँ। वह यह है कि वहाँ पहुँचने पर सूक्ष्मता बिल्कुल ख़त्म हो जाती है, मगर बहुत बढ़ने के बाद। बस इस से आगे Expression (अभिव्यक्ति) के लिये शब्द नहीं मिलते। इतना मैं और कहे देता हूँ कि इस हालत पर पहुँचने के बाद भूमा के क़रीब पहुँचने के लिये हज़ारों वर्ष भी कम हैं। बल्कि उस दशा पर (जहाँ कि सूक्ष्मता समाप्त होती है) जाने के लिये हज़ारों वर्ष चाहियें और फिर नहीं मालूम कितनी हज़ार सीढ़ियाँ भूमा के निकट पहुँचने में लगेंगी। मैं तो यही समझता हूँ कि इन हालतों को पार कराने की शक्ति सिवाय हमारे गुरु महाराज के, किसी में पाई नहीं जाती और यह ईजाद (अन्वेषण) ''आप'' ही की है कि जिस्म रखते हुये यह Stages पार कराई जा सकती हैं।

कहाँ तक धन्यवाद ऐसी बुज़ुर्ग हस्ती को दिया जावे कि जिसने बज़रिये Transmission (प्राणाहुति) एक सेकेण्ड में उस आख़िरी हालत पर पहुँचना मुमकिन बना दिया। हम लोग वाक़ई अन्धे हैं जो ऐसी बुज़ुर्ग हस्ती की तरफ़ नहीं देखते, जिसने वह काम कर दिखाया, जिसके लिये spiritual history (अध्यात्मिकता का इतिहास) ख़ामोश है। ईश्वर करे हम सब को यह हालत नसीब हो।

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत।

❑❑❑

साधना का मार्ग

ईश्वर के रास्ते में जो बातें भी आती हैं वह सब हमारे भले के लिये आती हैं । अगर रुकावटें भी हैं तो इसका अर्थ यह है कि मालिक को उन्हें दूर करने के लिए हमारे ख़्याल में रहना पड़ेगा । तो फिर इस से अधिक हमें और क्या चाहिये कि मालिक का ख़्याल हमारी ओर रुजू हो । समस्त पूजा और ध्यान का यही उद्देश्य होता है कि मालिक की निगाह किसी प्रकार हम पर फिरने लगे । किन्तु मालिक की निगाह हम पर तभी फिरती है जब उसकी खोज में गड्ढा या ऊँची नीची जगह आ जाती है । सूरदास जी चूंकि अन्धे थे, बेचारे कृष्ण के प्रेम में लकड़ी से कुआँ न टटोल सके और उसमें गिर गये । अन्त में श्री कृष्ण जी ने अपने हाथों उन्हें निकाला । कितना सौभाग्य था कि कृष्ण जी के हाथ उनके शरीर पर पड़े, गोया कि कुएं में गिरने से उनकी पवित्रता और बढ़ गई ।

जब तक अहमियत (अहंता) मौजूद है इन्सान अपनी तारीफ़ से प्रसन्न भी होता है और जब कोई उसको भला-बुरा कहता है तब बुरा मालूम होता है । अहमियत का कोई ठीक नहीं-न मालूम यह कहाँ तक जाती है और शुद्ध अहमियत से तो बहुत दिनों में पीछा छूटता है, और यही तारीफ़ शुद्ध माया और शुद्ध अहंकार की है । यह दोनों वस्तुएँ बहुत शक्ति रखती हैं और योगी अधिकतर इन्हीं से गिरता है । सर्वशक्तिमान ईश्वर अपनी दया करें ।

एक बात मैं तुम्हें और बतलाता हूँ कि मान और अपमान इन दोनों से हमें कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये । अपमान तो बहुत शीघ्र छूट जाता है किन्तु भाई ! मान का तोड़ना सच में ईश्वराधीन है । जब ईश्वर की हमारे ऊपर पूर्ण कृपा होती है तभी पीछा छूटता है, फिर भी जब तक शरीर मौजूद है, कुछ न कुछ यह अवश्य शेष रह जाता है । मैं अपनी कमज़ोरी भी लिखता हूँ, जब कोई मेरी प्रशंसा करता है तो चित्त मेरा भी प्रसन्न हो जाता है किन्तु यह बात अवश्य होती है कि एक तो चित्त बहुत कम प्रसन्न होता है और दूसरे होता भी है तो मुझे यह अनुभव नहीं होता कि किस की प्रशंसा हो रही है और कौन प्रसन्न हो रहा है । हम जब अभ्यास शुरू करते हैं तो

हमारी निगाह मालिक पर रहती है और अपना रिश्ता फिर बन्दे का हो जाता है । अब तो बन्दगी की डोर मालिक तक हमने इस हद तक पहुंचा दी है, तो उसको ख़बर होने लगी कि कोई उसकी याद कर रहा है । गोया वह अब तुमसे मुख़ातिब होने लगा, और जब वह मुख़ातिब होने लगा तो उस के पास क्या था ? बेपरवाही विशेष रूप से, और वह असल चीज़ जिसके कारण वह मालिक बना है, गोया वही चीज़ अब तुममें भी उतरने लगी, अर्थात् तुम्हारी भी हैसियत कुछ न कुछ वैसी ही बनने लगी गोया थोड़ी बहुत निस्बत तुम मे भी आने लगी । या यूँ कहो कि उसकी झलक बहुत कुछ अब तुम में भी पैदा हो गई । अब चूँकि तुमने बन्दा होने का रिश्ता लेकर उसकी याद की है इसलिये तुम्हारी चीज़ भी अब उस तक पहुँचने लगी । और जब तुम्हारी चीज़ उस तक पहुँची ? वही बन्दगी और भक्ति का ख़्याल, और यह चीज़ पहुँचती ही रही, यहाँ तक कि तुम अपने को भूलने लगे । जब यह हाल हो गया तो वह चीज़ चूँकि उस तक पहुँच चुकी थी अर्थात् बन्दगी और भक्ति का ख़्याल-अतः तुम्हें यह मालूम होने लगा कि वह स्वयं अब तुम्हारे ख़्याल में है । इसी प्रकार बहुत सी दशाऐं समझ में आती हैं, उदाहरणार्थ अन्तर्मुखी आदि । वह सब उसी की ओर से मालूम होती हैं । इस प्रकार भक्ति का एक नया अंक खुल जाता है ।

तुमने बहुधा यह लिखा है कि शरीर पिघल-पिघल कर बहता है । एक बात लिखता हूँ जो सम्भव है इसके जवाब के लिये पर्याप्त हो, वह यह कि जब हम तबियत से और प्रेम से अभ्यास करते हैं तो पिछले विचारों का जो प्रभाव है वह सब दूर होता जाता है और परमाणु भी पुराने गिरते जाते हैं । और अच्छे परमाणु उसकी जगह पर बनते जाते हैं। परमाणु तो वैसे प्रत्येक शरीरधारी के उसके विचार के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं, और जो ईश्वर की ओर प्रेमपूर्वक बढ़ता है उसके उसी रूप में परमाणु बनते हैं ।

असल प्रेम वही है कि प्रेम करते करते प्रेम की खबर न रहे । जब यह हालत पैदा हो जाती है तो फिर असल में भिदाव शुरू हो जाता है और तबियत नम्र बनती चली जाती है । इसी हालत में या इससे और आगे बढ़कर भक्तों ने कहा है कि :-

''बिना भक्ति तारो, तब तारिबो तिहारो है'' ।

एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

साधना और कृपा

तुमने जो लिखा है कि बेख़्याली की सी दशा महसूस होती है । यह हालत बहुत अच्छी है, मगर अभी तुममें बेख़्याली की तमीज़ बाक़ी है अर्थात् ख़्याल और बेख़्याल दोनों का अन्दाज़ अभी तुम में बाक़ी है । यह चीज़ भी नहीं रहनी चाहिये तब Originality (वास्तविकता) की शुरुआत समझो । हिम्मत है तो यह चीज़ भी ईश्वर देगा । यह इतनी बारीक चीज़ है कि हर शख़्स को इसका अन्दाज़ा भी नहीं हो सकता । इसका मज़ा चखने वाला ही समझ सकता है । ईश्वर करे यह हालत पैदा हो जावे ।

एक बात मेरे समझ में आ गई, वह तुम्हारे ख़त से ताल्लुक नहीं रखती, मगर लिखे देता हूँ । तुम्हारी और श्यामपती जी की गुफ़्तगु नारायण ने सुनाई थी कि श्यामपती जी को ताज्जुब हुआ कि जब तुमने उनके यहाँ का वातावरण बता दिया । एक बात का तजुर्बा करना, मेरा तजुर्बा नहीं है, और मैं भी देखूँगा, — यह चीज़ नई ख़्याल में आई है और इस को याद भी रखना, मुमकिन है मैं भूल जाऊँ । किसी चीज़ की मौजूदगी या असर वातावरण पर असर डालती है । जो मनुष्य या औरत सामने आवे तो उसके ख़्याल जैसे भी हैं, वह भी उसके क़रीब के यानी जिस्म से मिले हुये वातावरण पर असर रखेंगे । इसलिये कभी इसका तजुर्बा करना कि मनुष्य के चारों तरफ़ जो वातावरण होता है, वैसे ही उसके ख़यालात भी होते होंगे । एक नया ख़याल आ गया सो लिख दिया; तजुर्बा इसका नहीं किया ।

तुमने लिखा है कि "जैसे दुनिया का एक साधारण मनुष्य प्रतिदिन के क्रमानुसार जीवन व्यतीत करता है," बस यही हाल मेरा है । तुमने जहाँ तक इसको एहसास किया है, लिखा है; मगर इस को ठीक Express (व्यक्त) नहीं कर सकीं । इस बात में अभी बहुत मोटापन है । जो असली हालत इससे ताल्लुक़ रखती है, वह बहुत दूर है और वह ईश्वर का एक रहस्य, भेद है जिसको लालाजी साहब ने बहुत बचाकर मेरे एक ख़त के जवाब में लिखा है और उसके खोलने की मुमानियत भी उस वक़्त की थी । कबीरदास

ने अपने लायक़ शिष्य धर्मदास जी से कहा है —

> ''धर्मदास तोहे लाख दुहाई ।
> सार भेद बाहर नहिं जाई ।।''

और यही दोहा मैंने 'लाला जी' को लिखा था, जब कि मेरी दशा उनकी कृपा से बहुत कुछ परिपक्व हो चुकी थी । इसी में यह भी लिखा था कि सींक की ओट पहाड़ मालूम पड़ता है ।

इस दोहे का मतलब यह नहीं है कि आध्यात्मिक-विद्या ख़ालिस रूप में किसी को प्रदान न की जाये, बल्कि यह मतलब है कि असल भेद को जबान से न बताया जाये, जब तक कि अभ्यासी स्वयं उसको अनुभव न करने लगे । इस लिये ज़बान से बतान मना है । अगर उस बात का किसी शख़्स को यक़ीन हो जाये तो फिर मुमकिन है ईश्वर की Importance (महत्ता) उस की दृष्टि में जाती रहे, और इस चीज़ को जल्दी कोई यक़ीन भी नहीं करेगा ।

मुझ से लाला जी साहब ने एक जगह नोट में कहा है कि ''तुम किसी एकान्त और अच्छी जगह में जाकर इस का तजुर्बा करो कि अपनेआप को इतना नीचा उतार दो कि जो सब से ज़्यादा पतित और रंक की हालत हो सकती है, और फिर आहिस्ता-आहिस्ता तरक़्क़ी करते हुये, चक्रों का हाल जानते हुये, अपनी हालत पर आ जाओ, और जितना Time मैं इन्तहाई पतित की हालत में रहूँ और उस से आगे तालीमी हालत पर (यानी सिखाने वाले की हालत पर) न आ जाऊँ, तब तक तुम लोगों के सिखाने का ज़िम्मा ख़ुद लिया है ।'' वह मुझे यह तजुर्बा कराना चाहते हैं, मगर मैं नहीं कह सकता, इस के लिये मुझे वक़्त मिले या न मिले, और यह चीज़ ऐसी जगह हो सकेगी जो किसी पहाड़ या जंगल के कोने पर हो । मैंने बहुत से ईश्वर के भेद खोले हैं और मैं किताबों और चिट्ठियों में बहुत कुछ लिख चुका हूँ । बहुत ख़ास बात मुमकिन है, न कही हो । चूंकि अब हुक्म भी ऐसा है कि मैं सीने पर रखकर कुछ न ले जाऊँ । लिखने वाला न मिलने की कमी भी मुमकिन है बहुत सी बातें न खुलवा सकूँ और लिखने वाला अगर हो तो कैसा हो कि छाया की तरह मेरे साथ लगा रहे । जिस वक़्त जो ख़याल मुझको पैदा हो, लिख़ ले ।

जब तुम ने अपनी टीसन लिखी तो मुझे अपनी टीसन की याद आ गई और इसी कुरेदन और अशान्ति में मुझे वह मज़ा मिला है कि शान्ति के

तलाश करने वाले इस चीज़ को ठकुरा दें । अब ज़रूर इन सब बातों से स्वतन्त्र हूँ । न अब कुरेदन है, न टीसन । और मेरी इस चीज़ की नक़ल नहीं करना चाहिये, इस लिये कि यह चीज़ ख़ुद बख़ुद पैदा होती है । श्यामपती जी से पूछना कि कबीर दास के उस दोहे का क्या मतलब है । वह अच्छा बताऐंगे, इसलिये कि वह क़ाबिल आदमी हैं, और फिर मेरा मतलब भी उन्हें बता देना । एक चीज़ अच्छी सिद्ध हो जावेगी, वह मुझे लिखना ।

केसर का भी ख़त मिल गया — उन्हें बेचैनी मुबारक हो । यह चीज़ बड़ी मुश्किल से मिलती है और फ़क़ीरों की संगत से, अगर जिज्ञासु में तलाश है, तो यही चीज़ पैदा होनी चाहिये । इसी को सूफ़ियों ने दर्द-दिल कहा है । अब इसके भी बहुत से Stages हैं । जितने अच्छे Stage का दर्द-दिल है उतने ही अच्छे Stage पर अभ्यासी पहुँचेगा । मैं तो सच कहता हूँ कि ठूंसम-ठांस करता चला जाता हूँ—इसलिये कुछ न कुछ काम बन ही जावेगा । बाक़ी, असल शौक़ मुश्किल से किसी में होगा । लाला जी साहब की महफ़िल में लोग अच्छे-अच्छे थे, मगर इस चीज़ की फिर भी बहुत कमी थी । और सच पूछो तो "आप" इतने उदार चित्त थे कि रास्ते, गली, जवाहर बिखेरते चले जाते थे । फिर भी हम लोगों की आँखें न खुलीं, और उनको वाक़ई तौर पर अब तक कोई पहचान न सका । मुझे भी होश न आया कि "आप" से बहुत सी गुत्थियाँ सुलझा लेता । यह "आप" की मेहरबानी थी कि मुझे इस क़दर दे गये ।

एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत ।

□□□

ओऽम तत् सत्

हममें से बहुत से लोग मोक्ष और ईश्वर प्राप्ति हेतु अत्यन्त अभिलाषी हैं और उसे अपना पुनीत कर्तव्य भी मानते हैं । परन्तु जब हम कर्तव्य का विचार करते हैं तो हम अपने को एक प्रकार के बन्धन में जकड़ा पाते हैं । वह बंधन क्या है ? हमारा आज का स्तर सीमा-बद्धता का एक संकुचित क्षेत्र मात्र है । हमारा आज का स्तर सीमा-बद्धता का वह स्तर है जिससे हम छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकते और जिसे हम विस्तृत अनुभूति अर्थात् अनन्त सत्य तक ले जाते हैं । परन्तु यह मुख्यतः हमारे द्वारा अपनाये गये साधन और उपक्रम पर निर्भर करता है । यदि अकस्मात् हम उन साधनों में पड़ गये जिन के द्वारा हमारे बंधनों और आवरणों में वृद्धि होती है तो निश्चित रूप से हम अनन्त सत्य की अनुभूति से कोसों दूर रहते हैं । साधन ऐसे भी हो सकते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि के अनुकूल हों परन्तु वे वस्तुतः ग़लत अथवा अनुपयुक्त हो सकते हैं, और जो केवल एक उस खिलौने की भाँति होंगे जिससे किसी बच्चे को क्षणिक आनन्द तो मिल सकता है, परन्तु वे ही उस के हृदय में अधिक सुख और अधिक आनन्द प्राप्त करने की कामना उत्पन्न कर सकते हैं । वे उस के अन्दर एक वह आकर्षण पैदा कर देंगे कि वह अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त करने का इच्छुक बन जायेगा । परन्तु जब तक वह इस आनन्द के आकर्षण में फंसा रहेगा, उसकी प्रगति अवरुद्ध रहेगी । उसकी स्थिति एक उस कूप-मन्डूक की भांति बन जायेगी जिसके निकट सारा संसार उसी कुएें में निहित है । परन्तु यदि हमारा वर्तमान स्तर हम में अनन्तता के उच्चतर आनन्द की चेतना प्रेरित करता है तो हम अनन्त क्षेत्र में आगे बढ़ने के विचार के प्रति जागृत हो सकते हैं । इसीलिये यह कहा गया है कि ज्ञान के प्रत्येक भाग के लिये कम से कम दस गुना अधिक बुद्धि की आवश्यकता है । यदि इतनी बुद्धिमत्ता हममें है, तो निश्चय ही ध्येय हमारी दृष्टि में रहेगा, और हम सत्य के क्षेत्र में अधिक से अधिक आगे बढ़ने की प्रेरणा पाते रहेंगे । परन्तु कठिनाई तो उस समय पड़ती है, जब हम प्रगति हेतु अपनी ही साधन-सम्पन्नता में जकड़े रहते हैं । ऐसी दशा

में मोक्ष प्राप्ति का विचार तक हम में उत्पन्न नहीं हो पाता । यह वास्तव में एक बहुत बड़े खेद की बात है । ऐसे लोग सदैव अपने ही विचारों के शिकार बने रहते हैं, जो उनके अपने विचार और अभ्यास के आवरणों में निरन्तर वृद्धि करते रहते हैं । इस प्रकार से वे अपने साधनों में इतनी संकीर्णता उत्पन्न कर लेते हैं कि वे उस दलदल से छुटकारा प्राप्ति के साधनों को सुनने तक को तैयार नहीं होते ।

इस प्रकार से प्रारम्भ में अपनाये गये साधन ही हमारे मार्ग में रोड़ा बन जातें है । वास्तव में मनुष्य की आत्मा की उन्नति का कोई निश्चित स्तर या सीमा नहीं है, क्योंकि हमें तो अन्त में उस महा-अनन्त में अपने को लय कर देना है । यदि अन्तिम लक्ष्य हमारी दृष्टि में रहे तो प्रारम्भ में अपनाये गये साधन ही हमें उस अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचायेंगे या अग्रसारित करेंगे और ईश्वर स्वयं हमें उसे पथ-प्रदर्शक की प्राप्ति करायेगा जो हमें आदि शक्ति की अनुभूति कराये । इसके विपरीत यदि किसी ने स्वयं वास्तविक सत्य को पूर्ण रूपेण न समझा हो तो उसके दुारा अपनाये गये साधन उस की प्रगति में बंधन का काम करेंगे । इस लिये निश्चित सफलता का एक ही साधन है, और वह यह कि मनुष्य अपने में अपने ध्येय की प्राप्ति हेतु एक घोर तड़प पैदा करे, और यदि उसने ऐसा कर लिया तो पथ-प्रदर्शक स्वयं उसकी खोज करेगा ।

जो लोग वास्तव में सत्य की झलक देखना चाहते हैं, मेरी राय में उनके लिये एक ही उपाय है, और वह यह कि वह लोग, वह साधन अपनायें जो उनके अन्तस्तल पर प्रभाव डाल सकें । इस हेतु अपनाये गये बाह्य साधन व्यर्थ हैं, जिस के द्वारा ध्येय की प्राप्ति असम्भव है ।

वास्तविक साधनों की खोज हेतु हमें उन बातों पर विचार करना है जो सृष्टि के निर्माण का कारण बने । निश्चय ही इस हेतु एक शक्ति कार्यशील थी । वह क्या है ? वह केवल संकल्प ही था जिसमें उत्पत्ति का भाव निहित था, और उसके साथ ही साथ उसकी पृष्ठभूमि में उसके पोषण और विनाश का भाव भी निहित था । वही संकल्प मनुष्य में भी अवतरित हुआ जो उसके अस्तित्व का एक अभिन्न अंग बन गया । यदि हम अपनी उस शक्ति का उपयुक्त उपयोग करें तो हमारी समस्या का हल मिल जायेगा । विचार में वही शक्ति निहित है, परन्तु उस का विस्तार मानव स्तर तक ही सीमित है । ज्यों ज्यों हमारा बिकास होता है यह शक्ति में परिणित होने लगती है और हम अपने अस्तित्व के विभिन्न स्तर और क्षेत्र निर्मित करने लगते हैं

जिसमें से होकर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति हेतु गुज़रना पड़ता है । यह बंधन आवरण बन जाते हैं, जिन के कारण हम वास्तविकता की झलक तक देखने में असमर्थ रहते हैं । ऐसी स्थिति में इन से मुक्ति हमें तभी मिल सकती है जब हमें किसी उच्चतम स्तर के पथ-प्रदर्शक का सहारा मिले, जिसकी सहायता से हम अपने इन बन्धनों को तोड़कर अनन्त सत्य की प्राप्ति के मार्ग को सरल और सुगम बना सकें । हमारे अपने चक्र, ग्रन्थियाँ तथा उप-ग्रन्थियाँ, आदि प्रारम्भ में हमारी उन्नति में रोड़ा अटकाते हैं, जिनमें से होकर हमें सत्य की प्राप्ति हेतु गुज़रना है । इस के अतिरिक्त हमारे ग़लत विचार और अभ्यास भी अनेक जटिलतायें उत्पन्न कर देते हैं जिसको हमें आत्मशुद्धि (Cleaning) की युक्ति से दूर करना है ।

संक्षेप में उस मालिक का सहारा नितान्त आवश्यक है जिसने स्वयं कुल यात्रा कर ली हो और अपने में उस ईश्वरीय शक्ति का संचार कर लिया हो । केवल ऐसी स्थिति में ही ईश्वरीय केन्द्र की दिव्य शक्ति, अभ्यासी में संचारित होने लगती है । यह सूक्ष्म शक्ति इतनी प्रबल होती है कि उच्चतर स्थितियों में इसके प्रवाह की प्रबलता में टिक सकने में असमर्थ होने के कारण अभ्यासी नीचे लुढ़क आता है । ऐसी स्थिति में मालिक की अलौकिक शक्ति ही वह सहारा है जो अभ्यासी को उस प्रबल प्रवाह में ऊपर खींच लेती है और सत्य का अवलोकन करने में उसे सहायक होती है ।

परन्तु अभ्यासी के भी कुछ कर्तव्य हैं । सर्वप्रथम मालिक में उस का अटूट विश्वास होना चाहिये और उसका सर्वत्र सहयोग भी नितान्त आवश्यक है । यदि वह ऐसा कर लेता है तो निश्चय ही दिन प्रति दिन जागृति चेतन में अद्भुत परिवर्तन होता जायेगा और साथ ही साथ चेतनाओं की उच्चतर स्थितियों में होकर उसकी यात्रा आरम्भ हो जायेगी । साधारणतः चेतना तीन प्रकार की होती है :- चेतना, उप चेतना और दिव्य चेतना । यह एक प्रकार से विस्तृत भाग कहे जा सकते हैं । यद्यपि इनमें भी असंख्य स्तर विद्यमान हैं । कर्मों के फल अथवा निम्न स्तरीय चेतना हमारे उप-चेतन मन पर अपना प्रभाव डालती है और हमारे भाग्य का निर्माण करती है । इसलिये सर्वप्रथम हमें सही विचार और सही कर्मों द्वारा निम्न स्तरीय चेतना को सुधारना है ताकि वह स्वयं एक उस शक्ति में परिवर्तित हो जाये जिसके द्वारा उप-चेतन मन अधिक उत्तम स्थिति में लाया जा सके । यह स्वयं हमें दिव्य-चेतना की स्थिति तक पहुँचा देगा । मेरे विचार से यदि दिव्य-चेतना के शब्द को संशोधित करके दिव्य उप-चेतना कहा जाये तो उसके अग्रिम प्रभावों को समझना सरल

हो जायेगा । किसी प्रकार यदि मालिक की कृपा से हम यहाँ तक पहुँच गये तो दूसरा अध्याय प्रारम्भ हो जायेगा । एक उच्चतर स्थिति का दृश्य हमारी दृष्टि में आ सकेगा । उच्चतम शब्द का अर्थ केवल उन दशाओं से है जो सूक्ष्मतम दुर्लभ स्थितियाँ हैं और इस संदर्भ में आई समस्त आध्यात्मिक दशायें और क्षेत्र इसी अर्थ से सम्बन्धित हैं । संक्षेप में चेतना की विभिन्न दशायें एक दूसरे के बाद हमें त्रिगुणातीत की दशा तक और यहाँ तक कि सत्य से भी परे ले जाती हैं । मोक्ष की स्थिति उस के बाद प्रारम्भ होती है, परन्तु उस के लिये बहुत ही कठिन यात्रा तय करनी पड़ती है । जब मोक्ष का प्रारम्भ हुआ तो यात्रा की सारी थकान दूर हो जाती है । हम उसके बोझ से हल्के हो जाते हैं ।

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारी यात्रा समाप्त हो गई । हम अब भी मूलाधार की ओर बढ़ते जाते हैं । जहाँ अनुभूति अपना वास्तविक रूप धारण कर लेती है । रंगदार स्थितियों का दृश्य समाप्त हो जाता है और हम अनन्त सत्य के सही रूप का अवलोकन प्रारम्भ कर देते हैं । परन्तु यात्रा अब भी समाप्त नहीं हुई । अब भी कुछ बाक़ी है । मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है । उस स्थिति में यद्यपि हमारे सफ़र का अन्त भले ही हो गया हो परन्तु फिर भी जब तक वह भाव उपस्थित है वह स्वयं ही एक बंधन है । ऐसी स्थिति में मालिक की सहायता ही एक मात्र वह सहारा है जो हमें उस से ऊपर ले जा सके, परन्तु वह तभी सम्भव है जब हम में अपना भान भी न रहे । इस प्रकार से मैं यह अधिक उचित समझता हूँ कि लोग बजाय अपने को जानने के अपने को भूलने का प्रयत्न करें ।

वास्तव में यह आत्म समर्पण की वह स्थिति है जब मनुष्य सच्चे भक्त की तरह अपने को पूर्णतया मालिक की इच्छा पर छोड़ देता है और इस प्रकार उस की कृपा रूपी निर्मल धारा से अपने को सदैव सराबोर पाता है । यह मालिक और सेवक का नाता है जिसे सदैव बनाये रखना है, क्योंकि इसी ने हमें दिव्य चेतना के उच्चतर स्तर तक पहुँचने में सहारा दिया । यही वह स्थिति है जहां हमारे अस्तित्व की वास्तविक्ता प्रकट होती है, परन्तु यदि मोक्ष का विचार उपस्थित है या इस विचार का अनुभव मात्र भी है तो भी हम बन्धनों से मुक्त नहीं हैं । जब मोक्ष की चेतना भी समाप्त हो गई तो मनुष्य अपने को अपार आश्चर्य में खोया पायेगा जहाँ पर सत्य का भान भी नहीं रहेगा । वह यह भी अनुभव नहीं करेगा कि वह अनन्त से सामिप्य रक्खे है । इस दशा का अधिक सुन्दर वर्णन तभी हो सकेगा जब या तो

अभ्यासी इस स्थिति में पूर्णतया लय हो जाये या अनन्त की स्थिति स्वयं उस पर पूर्ण रूपेण अवतरित हो जाये । जब सब कुछ समाप्त हो जाये तो मनुष्य अपने को शून्य पाता है । ब्रह्म में लय अवस्था प्रारम्भ हो जाती है, परन्तु फिर भी हमें मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये निरन्तर आगे बढ़ते जाना है ।

मैं पूर्णतयः निर्भीक रूप से यह कह सकता हूँ कि विश्व में सहज मार्ग के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग अथवा साधना ऐसी नहीं है जो मनुष्य को उसके जीवन की छोटी सी अवधि में ही ऐसी उच्चतम आध्यात्मिक उन्नति प्रदान कर सके । सहज मार्ग आज हमारे सामने यही संदेश प्रस्तुत करता है ।

दिनांक 12.12.1965 को अन्नपूर्णा अनाथालय, मैसूर में श्रद्धेय श्री बाबूजी महाराज द्वारा दिया गया भाषण ।

□□□

चरम कोटि

दुनियाँ में बेशुमार मनुष्य हो चुके हैं जो एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर माने गये हैं । सन्त, महात्मा, ऋषि, मुनि, ज्ञानी व गुरु, बहुत हो चुके हैं जो कि एक दूसरे से अधिक योग्य और पहुँचे हुये जाने गये हैं अर्थात् दुनियाँ कभी इन लोगों से ख़ाली नहीं रही । दीपक हमेशा टिमटिमाते ही रहे और कुछ न कुछ प्रकाश भी फेंकते रहे जिससे मनुष्य को लाभ भी होता रहा; परन्तु असल दीपक तभी प्रकाशित होता है जब कि ईश्वर की इच्छा और आज्ञा होती है, वर्तमान समय भी ऐसा ही समय है, जब कि वह असल दीपक प्रकाशवान है; जैसा कि मैंने अपनी किताब Efficacy of Rajyoga में लिखा है । अब आवश्यकता केवल इस बात की है कि लोग पतंगों की भाँति बनने की चेष्टा करें ।

मेरी प्रबल इच्छा थी, कि मैं लोगों को आध्यात्मक उन्नति की अन्तिम हद का कुछ अन्दाज़ा करा दूँ । जिसके विषय में, मैंने अपनी पुस्तकों में जगह जगह पर कुछ बताया है । सहज-मार्ग की आध्यात्मिक शिक्षा भी उस अन्तिम लक्ष्य पर निगाह रखते हुये उसी प्रकार उच्चकोटि की है । साधारण नियम है कि एक ऊचें लक्ष्य की प्राप्ति के लिये शिक्षा भी उसी प्रकार ऊँची होना आवश्यक है जो कि हमें अन्तिम ध्येय की प्राप्ति में सहायक हो ।

इस विषय में मैंने कई वृत्तों द्वारा जो कि एक ही केन्द्र से भिन्न-भिन्न दूरी पर खींचे गये हैं, स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । Reality at Dawn में दिये गये चित्र के अनुसार, हमारा वर्तमान स्थान सब से बाहरी वृत्त से दिखाया गया है । यहाँ से हम को अपने मुख्य लक्ष्य अर्थात् केन्द्र की ओर जाना है, यही हमारी कुल यात्रा है । और यही केन्द्र उस का अन्त । रास्ते में हमें बीच के उन तमाम वृत्तों को पार करते हुये जाना है । यह वृत्त वास्तव में आध्यात्मिक उन्नति की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं जिनको मैंने इस ढंग से रखा है, इनमें से हर एक के अन्दर बेशुमार पर्दे तह दर तह मौजूद हैं । एक एक तह को पार करने के लिए बहुत समय की आवश्यता है । इन वृत्तों

में सुख के पाँच वृत्त, माया का क्षेत्र कहे गये हैं; और यही मानव जीवन की पहली मंज़िल है । आरम्भ में यह दशा गाढ़ी और ठोस रहती है, परन्तु आगे बढ़ने पर धीरे-धीरे पतली व हल्की होती जाती है । पाँचवें वृत्त तक पहुँचने पर यह दशा अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है, यहाँ तक कि माया का असर भी लोप होने लगता है । इस दशा को प्राप्त किया हुआ मनुष्य माया रहित कहा जा सकता है, और यह अव्यक्त गति की दशा है । लोगों ने उसे जीवन मोक्ष की दशा भी कहा है । ख़ुलासा यह, कि माया के कड़े बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है । इस के बाद जो कुछ भी रह जाता है वह माया का शुद्ध व वास्तविक रूप है । साधारणतयः लोगों का यह विचार है, कि माया के बन्धनों से मुक्त होने का अर्थ यह है कि हमारा प्रवेश ईश्वरीय मंडल में हो गया ।

इसका अर्थ यह हुआ कि माया के पाँच वृत्तों को पार करने के बाद दूसरा क्षेत्र ईश्वरीय मंडल ही है; परन्तु मुझे गुरु महाराज से रोशनी मिलने पर यह ज्ञात हुआ कि ऐसा नहीं है । माया की श्रेणियों अर्थात् आरम्भ के पाँच वृत्तों के बाद दूसरा क्षेत्र अहंकार (Ego) का है जिसको मैंने आगे और ग्यारह वृत्तों में प्रकट किया है । यह अहंकार की ग्यारह श्रेणियाँ हैं । हर एक वृत्त पर इस की दशा का अलग-अलग वर्णन करना बहुत ही कठिन है — क्योंकि इसके लिए शब्द ही नहीं मिलते । अब हमारी यात्रा अहंकार के इस मैदान में शुरु होती है और हम एक-एक करके उन वृत्तों को पार करते हुये आगे चलते चले जाते हैं । समझने के लिये केवल इतना कहना काफ़ी है कि ज्यों-ज्यों हमारा पग आगे बढ़ता जाता है, अहंकार की दशा जो आरम्भ में गाढ़ी और स्थूल थी, अब धीरे-धीरे हल्की और सूक्ष्म होती जाती है - यहां तक कि अन्तिम वृत्त तक पहुँचने पर अहंकार लगभग समाप्त हो जाता है; अहंकार का पूर्ण रूप में नष्ट हो जाना बिल्कुल असम्भव है, कुछ न कुछ अवश्य रहेगा । परन्तु वह इतना सूक्ष्म होगा कि उसको अहंकार कहना भी उचित न होगा, उस को समझने के लिये एक अत्यन्त हल्का अहंभाव कह सकते हैं । इस प्रकार से इन सोलह वृत्तों को पार करके हम माया और अहंकार के बंधनों से मुक्त हो गये और हमारा पग ईश्वरीय मंडल में जिसको कि मैंने Central Region कहा है. पहुँच गया ।

यहाँ पर न माया है न अहंकार, केवल एक अत्यन्त सूक्ष्म अहंभाव, जिसको मैंने Identity कहा है । इस मंडल में भी सात श्रेणियाँ हैं, जिनको मैंने प्रकाश के सात घेरे कहकर प्रकट किया है; परन्तु वह प्रकाश भी कैसा,

जो केवल कहने मात्र है । ज्यों-ज्यों हम इन घेरों को पार करते हुये आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों Identity का वह गहरा भाव जिसको ठोस कहना उचित होगा, धीरे-धीरे सूक्ष्म होता चला जाता है । यहाँ तक अन्तिम घेरे तक पहुँचने पर Identity अपना वास्तविक रूप धारण कर लेती है । इसका अर्थ यह हुआ कि अहंभाव भी नष्ट हो जाता है । इसके बाद ख़ाली तैराकी ही तैराकी रह जाती है । अब हम उस अनन्त सागर में तैरते चले जाते हैं जिस का ओर-छोर नहीं । अब मनुष्य उस जगह पर पहुँचता है जिसको मैंने अपनी किताब में अन्तिम क्षेत्र प्रगट किया है ।

समस्त बंधनों से मुक्ति पाने पर मनुष्य इस दशा को प्राप्त होगा ही, परन्तु बात तो तब है, कि जब जीवन में ही इस दशा तक पहुँच जाये और यह बात अब तक बिल्कुल असम्भव मानी गई थी । मेरा विचार है कि हमारे गुरु महाराज से पूर्व शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने अपने जीवन काल में इस हद तक उन्नति की हो । वास्तव में यह हमारे गुरु महाराज का ही आविष्कार (Invention) है कि मनुष्य अपना साधारण जीवन सुरक्षित रखते हुये उस अपार और अनन्त सागर में तैराकी प्राप्त कर सके । मैंने हर वृत्त की दशा को अलग-अलग वर्णन करने की चेष्टा की है । मगर उसके लिये उचित शब्द न प्राप्त हो सके ।

मालूम नहीं कि ईश्वर ने अपनी वास्तविक दशा को कहाँ तक छिपा कर रक्खा है जिस का न ओर है न छोर । प्रकाश के सात घेरों को पार करने के बाद यदि मस्तिष्क पर अधिकार बाक़ी रहे और उसके लिये शब्द भी प्राप्त हो जायें तो भी न मालूम आगे क्या क्या मिलेगा ? जहाँ तक अपनी विचार दृष्टि से इसका अनुमान लगाने का प्रयत्न करता हूँ तो केवल होश उड़ने के, और कुछ हाथ नहीं आता । असल केन्द्र निष्क्रय (Inactive) है; उस के गिरद भी एक प्रकार का वृत्त अनुमान में आता है, और यही बस अन्तिम वृत्त है । मैं उसका कुछ अनुमान ज़रूर लगा सका हूँ परन्तु उस का वर्णन करना असम्भव है । इससे अध्यात्मिकता के प्रेमी अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि ध्येय प्राप्ति के लिये उनको कितना चलना है, और कहाँ पहुँचना है, और वह कितना कठिन है । यह केवल प्राणाहुति की ही शक्ति है, जो कि सहजमार्ग का मुख्य अंग है, जो अत्यन्त कठिन कार्य को इतना सुगम बना देती है—और इस जन्म जन्मान्तर की समस्या को एक ही जीवन के अन्दर सुलझा देती है ।

❑❑❑

साक्षात्कार

जब जिस्म का भान नहीं रहता और रूह का भान भी थोड़ा बहुत समाप्त हो जाता है तो ऐसी हालत प्रतीत होने लगती है जिसके लिये सन्त तुकाराम ने कहा है ।

"गुड़ से मीठे हैं भगवान
बाहर भीतर एक समान ।"

इस अवस्था में दुई का पता कहाँ ? Non-Duality है मगर भान उस का कम है । यह अवस्था एक असीम समुद्र है, और इसमें जाने कितना पैराव होता है वेदान्त में अद्वैत (Non-Duality) कहा है । सम्भव है इससे भी आगे कोई कह गया हो, मगर यक़ीन कम है, क्योंकि बहुत सी बातें स्वयं अनुभव के लिये भी छोड़ दी जाती हैं । मैं बिना कहे नहीं रह सकता, सम्भव है लोग इससे सहमत न हों । जब हम ऐसी हालत में पहुँच जाते हैं - न द्वैत महसूस होता है न अद्वैत - इस तरह पर, अर्थात् इस की पहचान यह है कि चाहे सौ वर्ष या हज़ार वर्ष तक द्वैत-अद्वैत पर Meditate करें तो भी यह ख़्याल में न आये कि हम द्वैत में हैं या अद्वैत में — तब यह हालत सिद्ध हुई । अव्वल तो जो सचमुच इस हालत में है उसमें इतनी शक्ति ही नहीं रहती कि वह इस पर Meditate कर सके । एक ही मिनट में Meditate करने से दिल घबरा उठेगा । जब इन्सान इस हालत पर आ जावे तो फिर असलियत पर आ गया, मगर पैराव अभी बहुत बाक़ी है, इस की हद नहीं ।

भाई, मैं वाचिक ज्ञानियों की भाँति कह भी जाता हूँ किन्तु सच पूछो तो मुझे ख़बर नहीं । जब कोई अभ्यासी ऐसी हालतों में पहुँचता जाता है तो मुझे ख़बर होती जाती है । मुझे आता तो ख़ैर कुछ नहीं, मगर जो कुछ भी आता है, मैं चाहता हूँ कि लोग सीख लें ताकि वह ख़ुद ही ऐसे हो जायें, यदि उस हालत तक औरों को न पहुँचा सकें । मैं इस बात को कल सोच रहा था, कि हो सकता है कि इक्का-दुक्का, अगर मेरी तक़दीर मदद करे, तो ऐसे लोग बन जावें, किन्तु फिर इन हालतों में दूसरों को पहुँचना बड़ी

कठिन चीज़ हो जायेगी जब तक जिस्म का ज़र्रा-ज़र्रा भूमा की असल कैफ़ियत न ले आवे । और यह हो सकता है । कहूँगा यही, इसलिये कि जब हमारे गुरु महाराज में कोई कमज़ोरी नहीं तो मुझ में भी नहीं हो सकती । भले ही लोग इसको अहंकार समझें, इस की परवाह नहीं । जिस्म से कमज़ोर ज़रूर हूँ मगर हिम्मत और ताक़त में कमी नहीं, कि यह एक सेकेण्ड का काम है । भाई, मेरा तो यह ख़्याल है कि यदि रुहानी सम्बन्ध में कोई हालत पैदा करने में एक सेकेण्ड से दूसरा सेकेण्ड लग गया (बशर्ते-कि उस एक सेकेण्ड में काम करना भी चाहूँ) तो मैं पतित हो गया और इस क़ाबिल नहीं रहा कि दूसरों को तालिम दे सकूँ । लोग इस को अहंकार समझेंगे, समझा करें ।

अब सवाल यह है कि एक सेकेण्ड में सब कुछ कर देने का धक्का कौन बरदाश्त कर सकेगा, और मुझे अक्सर इसका खेद रहता है कि कोई शख़्स अगर और ज़्यादा नहीं तो इतना ही सीखने-सिखाने वाला इस मिशन में पैदा हो जाये । यह सब मालिक के हाथ में है, जो वह चाहेगा वही होगा । अन्त में कहना यही पड़ता है, क्योंकि हम फिर भी बन्दे हैं । अतः ऐटीकेट क़ायम रखना ज़रूरी है, हमारे यहाँ तो यह हाल है कि अगर हम चाहें भी Special Will से तालीम करना, तो लोग मेरे ख़्याल में ज़ंजीर डाल देते हैं । अब यह उनकी क़िस्मत है या मेरी !

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

चमत्कार की वास्तविकता

हमें तो वह चीज़ चाहिये कि जिससे हमारी लय अवस्था बढ़ती ही जाये और हम मिटते ही चले जावें, यहाँ तक मिटें कि हम रहें ही नहीं, अब जो भी रह जाये इस के बाद, बस वही है जिस को हमेशा रहना है; और यही असल है तथा यही जीवन का उद्देश्य है— हमारे यहाँ जो भी अभ्यास है सब इसी के लिये है। अगर हमारी संस्था तथा हमारे गुरु महाराज इस हालत को अभ्यासी में पैदा करा देते हैं तो यह कोई मामूली चमत्कार नहीं है—करिश्मा दिखाने वाले बहुत मिलेंगे और ऐसे भी लोग होंगे कि जो दरिया में बिना नाव के क़दम क़दम चल के पार कर सकें, और ऐसा करिश्मा दिखाने वाले जनता की निगाह में, मुमकिन है कि खप जावें, मगर उस करिश्मा दिखाने वाले साधू की तमाम उम्र की कमाई की मज़दूरी सिर्फ़ दो पैसे होगी। आप दो पैसा देकर नाव द्वारा दरिया पार कर सकते हैं और यह दो पैसा बच सकता है। उस को हक़ीक़त तो यूँ रही—अगर लोग करिश्मे सीखने चाहें तो बहुत आसानी से सीख सकते हैं और उसके के बताने वाले लोग बहुत मिलेंगे । मगर इसी ज़िन्दगी में आवागमन से रहित होना चाहें तो इस चीज़ के सिखाने वाले इक्का-दुक्का मिलेंगे। अगर कोई व्यक्ति ऐसा है जो इसी ज़िन्दगी में छुटकारा दिलवा सकता है तो यह चमत्कार किस से कम है। पंतञ्जलि ने योग दर्शन में बड़ी मुमानियत की है कि अभ्यासी सीधे रास्ते पर जाये तो मोक्ष का रास्ता है। अगर दाहिने बायें विचलित हो गया तो हट गया। मगर चमत्कार की ताक़त पैदा हो गई।

अब मान लो कि सिद्धि-शक्तियाँ भी हमें आ गईं तो जादूगरी समझी जावेगी। आध्यात्मिकता नहीं कही जा सकती। फिर जब इतना बड़ा ऋषि सिद्धि-शक्ति के ख़िलाफ़ है तो यह तय है कि इसमें हम को क़दम नहीं रखना चाहिये। इसलिये कि मनुष्य का कर्तव्य यही है कि वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करे, और यह कब हो सकता है ? जब कि दुनियाँ की हर चीज़ को जो जायज़ है, करते हुये हम सिर्फ़ अपने उद्देश्य की ओर बढ़ें, एवं निगाह रखें। अगर हम उद्देश्य की तरफ़ निगाह ने रक्खें और सिद्धि-शक्तियों की ही तरफ़ रहें तो हमारे कर्तव्य की दृष्टि में यह चीज़ विरुद्ध पड़ेगी और दोनों

चीज़ें साथ-साथ नहीं हो सकतीं ।

ईश्वर एक है लिहाज़ा हमें एक ही चीज़ लेनी चाहिये और एक ही तरफ़ ध्यान रखना चाहिये । अगर हम दूसरी चीज़ भी ले लेते हैं तो फिर तीसरी और चौथी चीज़ें पैदा हो जाती हैं । धार्मिक तौर पर समझने के लिये, मैं एक बात लिखता हूँ कि ईश्वर एक है (ईश्वर से मतलब मेरा भूमा से नहीं है) उसको दूसरी चीज़ बनाने की फ़िक्र हो गई और फिर तीसरी और चौथी और आप जब दो चीज़ें लेते हैं (चमत्कार और उद्देश्य) तो न मालूम कितनी चीज़ें आप के ख़्याल के सामने हो जावेंगीं ।

हम ''कुछ नहीं'' के हासिल करने के लिये एक चीज़ क़ायम कर लेते हैं और फिर एक को भी अपने ख़्याल से हटा देते हैं तब सही रास्ते पर आ जाते हैं । ''कुछ नहीं'' का मतलब कबीर साहब के दोहे से साफ़ हो जावेगा ।

दोहा: एक कहूँ तो है नहीं-दूजा कहूँ तो रारि
जैसा है तैसा रहे-कहें कबीर बिचारि ।

हमारे यहाँ, कोई अभ्यासी जिसको ईश्वर पर विश्वास मौजूद है, चमत्कार से ख़ाली नहीं है । सब में यह चीज़ें मौजूद होंगी । मगर यह हमारी संस्था की क़ाबलियत है कि उसको उस की ख़बर नहीं होने देते । फ़क़ीर का सब से बड़ा चमत्कार यही है कि जिसके पास बैठते ही मोक्ष के चिन्ह की अनुभूति होने लगे । अगर यह चीज़ लोगों के लिये कफ़ी है तो हमारे यहाँ बहुत मिलेगी । करिश्मा और कोई चीज़ नहीं है किसी चीज़ के लिये अपने ख़्याल को पक्का कर लेना है, फिर वही चीज़ पैदा होगी । यह बहुत छोटी सी बात है, जिन महात्माओं ने करिश्मे दिखलायें हैं उनकी सीमा करिशमों की वजह से नहीं बढ़ी । करिश्मों से किसी व्यक्ति को उसकी क्षमता (Capacity) पर विश्वास पैदा नहीं हो सकता । संस्था हमेशा शिक्षा (Teaching) से बढ़ेगी ।

ईसामसीह उम्र भर चमत्कार दिखाते रहे; अन्धों को आँख वाला बनाते रहे, और मुर्दों को जिलाते रहे । नतीजा क्या हुआ, कि उन्होंने सिर्फ़ १२ चेले छोड़े । उसमें से एक इस क़दर लायक़ निकला कि उसने अपने गुरु को सूली दिलवाई, और दूसरे चेले इस बात की साज़िश में थे । अब आप समझिये कि यह करिशमों का असर था—हाँ उन की शिक्षा एवं Teachings से सिर्फ़ उनकी संस्था बढ़ी है । दूसरी मिसाल मैं और लिखता हूँ, कि चैतन्य महाप्रभू उम्र भर चमत्कार दिखाते रहे और नतीजा यह हुआ कि ख़ुद उनके चेले उन की ज़िन्दगी में ख़िलाफ हो गये । करिश्मों से कभी आदमी Convince नहीं हुआ है, इस के लिये इतिहास गवाही देता है, कि वाक़ई जिसने ईश्वर

के लिये सब कुछ छोड़ दिया हो उसके लिये किसी भी धनाड्य की समस्त सम्पत्ति बोझ होगी जो गदहों पर ही लादी जा सकती है । जब किसी को विश्व क्षण-भंगुर सा मालूम होने लगे, तब यह हालत अगर वाक़ई तौर पर पैदा हो जाये, तो समय की हद ख़्याल से उड़ने लगती है । मगर कब ? जब हम इस ख़्याल को भूल जाते हैं तब time-limit ख़त्म हो जाती है ।

अब मैं लिखता हूँ, क्योंकि चमत्कार का ज़िक्र है कि यह चीज़ पैदा हो जाने पर (जो हमारे यहाँ कई अभ्यासियों की है) पलक मारने पर दुनियाँ के जिस हिस्से में चाहे, जा सकता है । मगर किसी ने जाकर अभी तक दिखाया नहीं । क्योंकि उस तरफ़ दिमाग़ का झुकाव होने ही नहीं दिया जाता । अब आध्यात्मिक लाभ इस से ज़रूर प्राप्त हुआ जो मैं लिखता हूँ, वह यह है कि इस चीज़ ने पूर्ण वैराग्य पैदा कर दिया । हमें सिर्फ़ उसी से मतलब रखना चाहिये जिसको प्राप्त करना है, और फिर जो चीज़ भी सामने आ जाये, बिला ख़्याल को ज़ोर दिये हुये-वह ठीक है । मगर फिर भी असलियत का ख़्याल रखते हुये कि यह बड़ी दुनियां का Theatre है-असलियत नहीं है । मगर कहेंगे उसको हम मुबारक, इसलिये कि हमारा रास्ता भी वही है । यहाँ यह सवाल उठ सकता है कि उस की प्राप्ति के लिये कब तक आँसू बहायें, और कब यह भूख मिटैगी ? उत्तर भी सादा, है कि जब तक वह न मिलेगा उस के लिये आँसू बहाने ही पड़ेंगे और बेक़रारी और बेचैनी से ही सरोकार रहेगा । प्यास उस रोज़ बुझेगी, जब आध्यात्मिकता में पूरा ग़ोता लगा लिया जाये । यह कैसे मुमकिन होगा ? प्रेम और अभ्यास से ही यह मुमकिन होगा । यह योग के ज़रिये ही हो सकता है ।

मार्ग बेशुमार हैं और सब का मतलब ईश्वर प्राप्ति है । हिन्दू मज़हब में यह ख़ूबी है कि हर बच्चे के taste के मुताबिक़ अलहदा-अलहदा खिलौने बना दिये गये हैं । जब यह बच्चे बड़े होंगे तो इन का लगाव और मुहब्बत खुद जाती रहेगी और उसकी तलाश शुरू हो जावेगी जिस मतलब से खिलौने बनाये गये हैं । अगर खिलौने से मुहब्बत अब भी नहीं जाती तो समझा जायेगा कि वह अपने से ऊँची हालत पर नहीं उठे । इस खेल के खेलने के बाद हमें ऐसी बात पर आ जाना चाहिए कि जिसका सब यह खेल था, उसको पाना ही हमारा ध्येय है । जब हम इस चीज़ पर आ जाते हैं तो हमारे पास एक ही रास्ता रह जाता है, और उसी रास्ते पर चलने को हम "योग" कहते हैं । इस लिये कि हम अब उसकी तलाश में हैं अर्थात् हम अपना लगाव व रिश्ता उस से क़ायम कर रहे हैं जिस का यह सब खेल है ।

□□□

कर्तव्य

हमारे सामने दो चीज़ें हैं-दुनिया और ईश्वर । दुनिया इसलिये कि हम उसमें पैदा हुये हैं और ईश्वर इसलिये कि हम वहाँ से आये हैं । इसलिये हम को अपनी दोनों Duties की तरफ़ ख़्याल रखना चाहिये और यह दोनों चीजें समासम रहना चाहियें । दूसरे मानों में जो कर्तव्य (Duties) हम से दुनिया में सम्बंधित हैं उनको यह समझ के करना चाहिये कि यह सब ईश्वरीय हुक्म है । अगर यह भाव हमारा बन जाता है तो हमें उसके नतीजे की फ़िक्र नहीं रहती, और जब नतीजे की फ़िक्र नहीं रही तो फिर हमसे वही काम होने लगते हैं जो ईश्वर से सम्बंधित हैं, और यही चीज़ निश्काम के क्षेत्र में आती है और उससे हमारा संस्कार बनना बन्द हो जाता है । हमारा इरादा नेक और भला होता है, जिसका नतीजा उस मनुष्य के लिये, जिसके लिये हमने अपना इरादा बनाया है, लाभदायक होता है तथा आराम पहुँचाता है, क्योंकि नेक इरादे में दूसरे को आराम ही पहुँचाने का मंशा होता है । इस तरह से हम अपनी duty सही मानों में अदा करते रहते हैं और उसके एवज़ में हमें जो कुछ मिल जाता है, उससे हम अपने और अपने बच्चों के पालन पोषण का इन्तज़ाम करते हैं जो भी एक Foremost duty है । यह तो हमारे रोज़ाना के कारोबार की बात रही जो सब आध्यात्मिक ही है । अब जब हमें इस से ऊपर उठने की फ़िक्र होती है तो हम अपने विचारों को इससे आगे भी दौड़ाने लगते हैं । आगे दौड़ना क्या है ? कि (जिससे) हमें उस घर की भी फ़िक्र होने लगती है जहाँ कि हमको जाना है; और हम वह रास्ता तलाश करते हैं जिससे कि हम घर पहुँच सकें और जब हमें घर की याद आने लगती है तो हमें घर पहुँचने की जल्दी भी पड़ जाती है । फिर हमारी वही हालत हो जाती है कि जैसे कोई व्यक्ति अपने बच्चों और घर से दूर हो गया हो, और अरसे तक दूर रहे, तो यह होता है कि सब कुछ छोड़कर वहाँ पहुँचने के लिए बेचैन होने लगता है, और पहुँचना शुरु भी कर देता है । यह हालत वैराग्य की है ।

अब मान लीजिये, यह हालत पैदा हो गई और किसी वजह से हम अपने घर न जा सकें तो यह भी तय है कि जहाँ भी हम हैं वहाँ का सब कारोबार करते हुये हम अपना ख़्याल और विचार घर ही की तरफ़ लगाये रहते हैं और सब काम भी करते रहते हैं । बस इसी शक्ल में हमको दुनिया के कामों में इख़्त्यार करना चाहिये कि जी हमारा घर पर रक्खा रहे और हाथ काम करते रहें । अब इस चीज़ को क़ायम रखने के लिये यह भी ज़रूरी है कि अगर हम पहुँच न सकें मगर अपने घर कम से कम चिट्ठी और ख़त वगैरह से ही हमें अपने घर की ख़बर मिलती रहे ।

बस यही शक्ल रामायण और गीता की रहती है कि यह चीज़ें हम को अपने घर की याद दिलाती रहें ताकि हम अपने घर की याद ताज़ा रख सकें । यह (याद) सिर्फ़ इतना ही काम कर सकेगी मगर पहुँचेंगे आप तब, जब आप अपना क़दम उस तरफ़ बढ़ायेंगे और रास्ता बताने वाला आप के साथ होगा । इसलिये कि हम अपने घर का रास्ता भूल ही चुके थे । जब याद ताज़ा हुई तो हमें रास्ता बताने वाले की भी ज़रूरत पैदा हुई ।

यदि यह रामायण और गीता वग़ैरह पढ़कर हम सिर्फ़ याद ही कर लिया करते तो इस से हमारा मतलब सिद्ध नहीं हो सकता था । इसलिये कि रास्ता बताने वाला होना लाज़िमी है । अब अगर रास्ता बताने वाला मिल जाता है और यदि उस पर चलने वाला भी हो तो फिर आप सोचिये कि इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं रह जाती । मैं विषय से अलग नहीं हो जाऊँगा मगर मैं एक श्लोक का अर्थ, जो **विवेक चूड़ामणि** में दिया है लिख दूँ । उसमें लिखा है कि ''Books do not help us in realization and when realization is achieved, books are useless.'' राम की तलाश में तो हम हैं, कृष्ण ही मिल जावें, इस लिये हम कृष्ण से पता पूछते हैं । जब कृष्ण पक्ष होता है तभी हम यह उम्मीद बाँधते हैं कि अब शुक्ल पक्ष भी आवेगा । 'राम' की तलाश की वजह से इसीलिये हमने अपने मिशन में कृष्ण को जगह दी । अब आप स्वयं तसफ़िया करें तो आप इस नतीजे पर आयेंगे कि इन की जगह हमारे सर पर ही है ।

अक्सर लोग यह प्रश्न उठा देते हैं कि दुनिया के कर्तव्य भी सम्हाल लिये और घर (ईश्वर के घर की) की 'याद' भी बेचैन करने लगी परन्तु फिर भी मुसीबत आ जावे तो क्या करना चाहिये और वह कैसे हटाई जा सकती है ? वैसे तो इस का जवाब बड़े लोग देते ही चले आये हैं, उसमें इतमिनान के लिये अपनी शक्ति भर लिख रहा हूँ ।

हम जब मुसीबत में होते हैं तो यही कैफ़ियत होती है कि चमकदार पहलू के ख़िलाफ़ (विपरीत) स्थिति में अपने आप को पाते हैं । दो पहलू एक ही चीज़ के होते हैं । जो चीज़ रोशनी के सामने है वह आराम और आसायश का नमूना है, बरख़िलाफ़ (विपरीत) इसके जो अंधेरे में है इसको हम मुसीबत गरदान्ते (पुकारते) हैं । चीज़ एक ही है और वह भी हमारी, मगर अफ़सोस यह है कि हम उसको अपना नहीं समझते वर्ना(अपितु) उस की यही शक्ल हो जाती कि जैसे एक डाक्टर अपने घर में ज़हर और अमृत, दोनों रखता है, और दोनों की परवाह एक ही तरीक़े से करता है । जब एक ओर देखता है तो अमृत रक्खा मालूम होता है और जब दूसरी ओर देखता है तो ज़हर । मगर डाक्टर की क्या हालत होती है ? जब वह ज़हर की ओर देखता है और जब वह अमृत की ओर देखता है तो भी उस की निगाह में कोई फ़र्क़ नहीं आता ।

कैसी अच्छी बात है कि अगर ज़मीन अपनी Axis (धुरी) पर न Rotate (घूमती) करती तो दुनिया की आबादी आधी रह गई होती । एक ओर दिन होता और दूसरी ओर रात । इसलिये यह चीज़ Nature (कुदरत) ने लाज़मी समझी कि Rotation (घूमना) ज़रूर रहे ताकि ईश्वर का मुल्क (जगत) आबाद व पुर बहार रहे । इसी तरह अब धार्मिक चीज़ को लेकर चलता हूँ तो इस बात का पता चलता है कि लोगों की ख़ुशी और आराम के एहसास करने के लिए ईश्वर ने यह चीज़ भी लाज़मी रक्खी है । इसलिये कि हमारी निगाह दोनों ओर जाती रहे, और एक दूसरे से हमारे ख़्याल में फ़र्क़ और तफ़ावुत बना रहे ताकि हम Compare (तुलना) करने पर आराम और आसायश को पहचान सकें । तो यह तो भाई कुदरत का इन्तज़ाम है और इस की ज़रूरत भी है जैसा कि मैंने ऊपर भी लिखा है ।

हमारी समझ में जब यह चीज़ आ जाती है तो मुसीबत की बेक़रारी इतनी नहीं रहती । फिर भी अगर मुसीबत हमकों इतनी नागवार है तो हमको चाहिये कि हम अपना मुँह उसकी दूसरी Side की तरफ़ फेर दें और यह Side कौन सी हो सकती है जो चमकदार और अच्छी हो ।

अब चकमदार और अच्छी कौन सी चीज़ है जो चमक की तरफ़ ले जावे । अब चमक कहाँ है, उसी जगह जहाँ अंधेरा कभी नहीं होता । और यह चीज़ क्या है ? इसको लोगों ने (संतों ने) ब्रह्मगति कहा है । और मुसीबत से छुटकारे के लिये सबसे अच्छा नुस्ख़ा यही है कि हम अपना रुख़ उस ओर फेर दें ।

अगर मुसीबतज़दा इन्सान को उस तरफ़ रुख फेरने की समझ नहीं आती तो दूसरों को चाहिये - और यह इन्सानी फ़र्ज़ भी है — कि किसी तरीक़े से उसका रुख उस चमकदार पहलू की तरफ फिरवा दें । यह हमारा कर्तव्य (Duty) है और इसी से मुसीबतज़दा को छुटकारा मिल सकता है । मैं चाहता हूँ कि इसमें कुछ भक्ति के छींटे का भी ज़िक्र कर दूँ जो इस असल मज़मून से अलहदा ज़रूर मालूम होगा, मगर एक बात मज़मून से ज़्यादा ही सही । एक कहावत है कि :-

''एक बार नारद जी विष्णु भगवान से मिलने जा रहे थे । रास्ते में एक लंगड़ा फ़क़ीर मिला, उसे जब मालूम हुआ कि नारद जी विष्णु भगवान से मिलने जा रहे हैं तो नारद से उस ने कहा कि विष्णु भगवान से कह देना कि 'उसे' उस लंगड़े की भी याद है । जब विष्णु भगवान को नारद ने लंगड़े का पैग़ाम दिया तो 'उन्होंने' कहा कि बकता है । नारद ने पूछा कि क्या बात है । विष्णु भगवान ने कहा कि वह चाहता है कि कुल दुनिया की मुसीबत उसी को दे दी जावे ।''

धार्मिक ग्रन्थों में बहुत सी बातें इस क़िस्म की मिलती हैं कि मुसीबत को फ़क़ीरों ने बहुत महत्ता (Preference) प्रदान की है ।

इस प्रकार मुसीबत से भी छुटकारा मिल गया और यदि ''याद'' की याद अभी भी है तब फिर अपने स्तर से ऊपर उठने का एक ही तरीक़ा शेष रह जाता है और वह है अभ्यास । दूसरे शब्दों में ईर्ष्या एवं क्रोध ही क्या, वरन् सभी प्रकार की असामान्य स्थितियों से, जो मनुष्य को Balance स्थिति (प्राप्त) प्रदान करने में बाधक हैं, छुटकारा पाना है, तो सर्वोत्कृष्ट मार्ग अभ्यास ही है जिस को 'सहज-मार्ग' साधना के अन्तर्गत बतलाया गया है और जिसके लिये Proper Guidance लाज़मी है और अभ्यासी के लिये Devotional Attitude फ़र्ज़ (Duty) है । अपने से ऊपर उठने के माने यह हैं कि यह सब चीज़ें दूर जावें और उसकी तरकीब यही है कि अपनी Duty (कर्तव्य) को निगाह में रखते हुये अपने में Absorb होता चले और ईश्वर की मौज के ताबे रहता चले । मैं ईश्वर की राज़ी व रज़ा रहना ही अच्छा समझता हूँ ।

❑❑❑

उजाला और अंधेरा

अंधेरा था । फिर उजाला भी शुरु हुआ । तब हमारी देखने की आदत हुई । बीनाई (Eye sight) हमारे साथ ज़रूर थी । देखते-देखते हम उजाले में फैल पड़े । मुआमला चमकीला था, दिल लुभाने लगा । चमत्कार और रोशनी का अन्दाज़ दिल को मरग़ूब (रुचिकर) हुवा । फिर क्या था, हर चीज़ हम देखने लगे; और रग़बत (रुचि, लगाव) का बीज तो पड़ ही गया था । लहू व लुआब (रक्त और मज्जा) - खेल-कूद और दिल बहलाव की सूरतें हमने अख़्तियार कर ही लीं । माया की झीनी हालत से हम उसकी ठोस हालत में आ ही गये ।

माया में एक अजीब बात है कि जो उसकी ठोस हालत है वह हमें झीनी मालूम होती है और जो झीनी है वह ठोस; और यही उस बाज़ीगरी का पेच है, जो अक़्ल पर पत्थर डाल देती है । बजाय एक के दो दिखाई देते हैं और फिर बेशुमार, और यह चमत्कार इतना अच्छा लगता है कि उससे सेरी (तुष्टि) नहीं होती । मुद्दतें गुज़र जाती हैं, सदियाँ गुज़र जाती हैं, मगर हम अपनी दिल-बहलाव की सूरत से नहीं गुज़रते । मगर जब कभी क़ुदरते कामला (सर्वशक्तिमान प्रकृति) मोजज़न (प्रवाहमान, उफनाई हुई) होती है, तो हममें कुछ रमक उससे ऊपर वाली हालत की भी आ जाती है ।

अगर अभ्यासी की तबियत सादिक़(सच्ची) बन चुकी है तो यह रमक ऐसी ख़ुशबू है कि बाग़ तक पहुँचा कर फूल का नज़ारा(दृश्य) सामने ले आती है । जब यह चीज़ है तो फिर बुलबुल ही बनकर चहचहाने से लुत्फ़ो सरूर (मज़ा व आनन्द) शुरु होता है ।

आप कहेंगे कि जिस की बू थी वह चीज़ सामने है, फिर बुलबुल बनकर दूसरों की निगाह में हज़ार-दास्तां (चर्चा का विषय) बनने की क्या ज़रूरत है । मैं जवाब में यही कहूँगा कि बिना उसके बने हुये फूल के क़रीब तरीं (सन्निकट) हो ही नहीं सकते । और यह चहचहाट वही टीस है जिस को आपने ख़त में लिखा है कि एक आध सेकेण्ड के लिये आ जाती है । मतलब यह है कि टीस है ज़रूर, ख़्वाह (चाहे) वह लम्हा (क्षणिक) भरके लिये ही क्यों न हो । अगर कहीं, ईश्वर न करे, यह जाती रहे तो फिर क्या है —

मक़सद (उद्देश्य) जिसके लिये हम अंदलीब (बुलबुल) बने हैं-हल नहीं होता । लिहाज़ा शुक्र है कि यह चीज़ आप में मौजूद है । हर अभ्यासी को इस चीज़(टीस) में हिस्सा लेना चाहिये यदि वह आला तरक़्क़ी (ऊँचे दर्जे की उन्नति) करना चाहे । और यह वेद की मजहूल (मूर्खतापूर्ण) सूरत सिर्फ़ उन्हीं लोगों के लिये रहने दीजिये जो सिर्फ़ इसी के हक़दार हैं ।

अब आप ने जो अंधेरे की बातचीत उजाले में की है, उसका जवाब यह है कि जब आप उजाला देखकर उजाले में मसरूफ़ (संलग्न) हुये, जो अंधेरे के बाद था, वह मसरूफ़ियत ऐसी गई जैसे थियेटर के पर्दों के नक़्शेनिगार(बेल बूटे) आग लगाने से सब दूर हो जाते हैं । अब फिर उस आग लगने की धुयेंदार शक्ल को देखने लगे । मगर आप उस शक्ल से गुज़र चुके हैं । अब क्या है ? वह अंधेरा जो रोज़े-अज़ल (आदिसृष्टि) से शुरु था, उस में अब आप मौजूद हैं । अंधेरा क्या है ? दूसरे मानों में Infinity का मंज़र (असीमित एवं अथाह का नज़ारा) जिसकी इन्तहा(हद, समाप्ति) नहीं । अतः आप जितना बढ़ेंगे अब यही चीज़ नज़र में आयेगी । मगर एक बात लिखता हूँ । चमगादड़ को अंधेरे में भी दिखाई देता है, मगर हम, आप नहीं देख सकते । इस से यह सिद्ध होता है कि वह आँख भी हमें पैदा करनी चाहिये, ताकि हम अंधेरे में भी देख सकें, यानी माद्दी (भौतिक या दुनियावी) आँख जब जाती रहती है, तब रुहानी आँख खुलती है, यानी जब दुनिया के देखने की ताक़त हम मादूम (क्षीण) कर लेते हैं, तब असली आँख खुलती है, जिससे हक़ीक़त (वास्तविकता) बेनक़ाब (प्रकट) होती है ।

भक्ति (Devotion) की हर जगह ज़रूरत है । बस यही चीज़ इस बीनाई (दृष्टि) को भी पैदा कर देती है । मगर वह Devotion इस शक्ल में नहीं रहता, कि जहाँ मैं और तू हैं । उस की शक्ल भी बदली हुई होती है । जब ऐसी बीनाई हम में आती है, तो लाज़िम (ज़रूरी) है कि अंधेरा-अंधेरा नहीं रहता । मगर याद रहे कि इस बीनाई में झलक उस चीज़ की होती है जो अंधेरे और उजाले से परे है । गुज़रते गुज़रते यह चीज़ भी आती है कि यह बेपायाँ किनार (असीमित एवं अपार) अंधेरा भी उस जगह पर खड़ा कर देता है, जहाँ पर दूसरे लफ़्ज़ों (शब्दों) में समझने के लिये अंधेरे की भी जान है और यह चीज़ ग़ालिबन (सम्भवतः) पहली Ring of Light (प्रकाश वृत्त) से शुरु होती है; और उसको न आप अंधेरा कह सकते हैं और न उजाला, बल्कि कुछ Dawn (प्रभात, उषा) से उसकी मुशाबहत (समता) है ।

—(एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

अमोघ मार्ग

शंकर ने अपने वेदान्त दर्शन की मीमांसा में दी हुई धार्मिक विधियों का विरोध किया है परन्तु मुझे इन दृष्टिकोणों से कोई मतलब नहीं । निस्संदेह ये धार्मिक विधियाँ कुछ सीमा तक ही सात्विक वृत्तियों का विवर्द्धन करती हैं । ये आध्यात्मिकता के लिये प्रारम्भिक पृष्ठभूमि भी तैयार कर सकती हैं । अतः मुझे उन समस्त धार्मिक विधियों का प्रतिपालन करने में कोई आपत्ति नहीं जो ईश्वर के साक्षात्कार में सहयोग प्रदान करती हैं ।

हिन्दुओं में सामान्यतः देवी देवताओं की उपासना प्रचलित है । इसका उद्देश्य केवल यह है कि भौतिक लाभ हो तथा बच्चों की सुरक्षा हो । इस प्रकार की उपासना में स्त्रियाँ अधिक संलग्न रहती हैं क्योंकि वे बच्चों को जन्म देकर उनका लालन-पालन करती हैं । अतः उनके ममत्व के बंधन पर्याप्त दृढ़ होते हैं । उनको अपना कार्य करने दो और हम अपना करें ।

मैं जप के पक्ष में नहीं हूँ क्योंकि वह पूर्णतया बाह्य है, यद्यपि मैं भी कुछ मामलों में स्वयं जप बतलाता हूँ परन्तु वे जप भिन्न प्रकार के होते हैं । वे वास्तव में अभ्यासी की निजी उन्नति के साधन हैं किन्तु हमारी संस्था में इस का उत्तरदायित्व गुरु पर है जो अभ्यासी को पावन प्राण-शक्ति द्वारा परिपालित करता है । अब यह अभ्यासी पर निर्भर है कि वह अपने प्रेम और भक्ति द्वारा गुरु से अधिक ग्रहण करके लाभ उठाये । अभ्यासी में जितनी अधिक भक्ति व आत्मसमर्पण की भावना होगी, प्राण-शक्ति उतनी ही शक्ति से उस ओर (अभ्यासी की ओर) प्रवाहित होगी ।

इस कलियुग में महात्माओं द्वारा ईश्वर के नाम का सतत् जप करना मोक्ष का अनिवार्य साधन बतलाया गया है परन्तु मेरा विश्वास है कि जब तक ईश्वर नाम के जप से उत्पन्न स्पन्दन (Vibration) में हम पूर्ण रूप से लय नहीं हो जायेंगे तब तक उसका मनोवांछित फल नहीं होगा । कुछ धार्मिक ग्रन्थ बतलाते हैं कि यदि हम ईश्वर का नाम लगातार चौबीस घंटे जपते रहेंगे तो हमें ईश्वर के दर्शन प्राप्त हो जायेंगे । काफ़ी दिन पहले मेरी माता

जी ने एक बार पूर्ण उत्साह के साथ ऐसा ही किया परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । साक्षात्कार के विषय में भी मुझे अपने निज के अनुभव के आधार पर ईश्वर दर्शन के प्रचलित एवं विश्वसनीय सिद्धांत पर विश्वास नहीं है । पूरे समय राम के ''सर्वव्यापी'' होने के गुण का मनन करते हुये 'राम' का मानसिक जप करने की सलाह कभी-कभी मैं भी देता हूँ । यह विधि सतत् स्मरण की दशा प्राप्त करने में भी सहायक होती है । वास्तव में हम लोग किसी भी नाम का जप नहीं करते और न अपनी कल्पना में उसकी कोई रूप रेखा निर्मित करते हैं बल्कि ईश्वरीय गुण (सर्वव्यापी) पर अपना विचार केन्द्रित कर देते हैं । हमें निराकार परमात्मा को प्राप्त करना है । इसके लिये हमें कोई ऐसा ही सूक्ष्म मार्ग जो क्रियात्मक हो, अपनाना चाहिये । परमात्मा की प्राप्ति का दूसरा मार्ग है कि गुरु का आकार सदा सामने रहे परन्तु यह तभी करना चाहिये जबकि गुरु वास्तव में उच्च स्थिति प्राप्त व्यक्ति हो, और मेरे पूज्य आध्यात्मिक पिता की भान्ति पूर्ण रूप से ईश्वर में लय हो चुका हो । महर्षि पतंजलि ने भी इस प्रक्रिया को सम्भवतः अपने सैंतीसवें सूत्र में स्वीकार किया है । प्रथम चार स्थितियाँ हम इस प्रक्रिया के द्वारा पार कर लेते हैं जिन का वर्णन मैंने Efficacy of Rajyoga में किया है । अन्तिम स्थिति अहंभाव का बिल्कुल अंत कर देती है । यह एक निश्चित साधन है । मैंने अपने आध्यात्मिक क्षेत्र में इसे बराबर अपनाया है । यदि ऐसा समर्थ सद्गुरु प्राप्त हो जाये तो उस के आकार का ध्यान किया जा सकता है, अन्यथा पहले वाला ढंग सर्वोत्तम है ।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि यदि तुम्हें ईश्वर दर्शन की प्यास है तो प्रकृति की भाँति ही सरल व सहज होने का प्रयत्न करो और ऐसा सरल साधन अपनाओ जैसा तुम बच्चे को बहलाने एवं दुलारने के लिए बचकाने (बच्चे जैसे) ढंग से अपनाते हो ।

मैंने लिखा है कि मैं तुम्हारी पाक्षिक रिपोर्ट पढ़ कर प्रसन्न हूँ । तुम्हारी उन्नति तेज़ी के साथ हो रही है । ईश्वर तुम्हें आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करे । अविवाहित जीवन के प्रति तुम्हारी जो शिकायत है उसके लिये मैं पहले ही लिख चुका हूँ परन्तु मैं इस बात पर और प्रकाश डालूँगा कि एक गृहस्थ को कौन से ढंग अपनाने चाहियें । हम लोगों को गृहस्थी, निर्लिप्त होकर चलानी चाहिये । प्रत्येक कार्य कर्तव्य समझकर करना चाहिये और उससे हमारा किसी प्रकार का लगाव नहीं होना चाहिये । उदाहरणार्थ हम शौच हेतु जाते हैं परन्तु उसके बाद हम उसके बारे में नहीं सोचते । पारिवारिक जीवन

अभिशाप नहीं है यदि उसे ठीक रूप में ढाल दिया जावे । मान लो तुम एक नियम का पालन करने के लिये बाध्य हो । तुम उसे नियम प्रतिपालन के लिये ही करो उसके पीछे अपनी कोई स्वार्थ भावना न रक्खो ।मैं इसे ही निर्लिप्त हो कर कार्य करना कहूँगा क्योंकि इसकी कोई छाप तुम्हारे मन पर नहीं पड़ेगी । हम को यह सोचना चाहिये कि वह प्रत्येक कार्य जो हम स्त्री या बच्चों के लिये कर रहे हैं, ईश्वरीय आज्ञा का पालन है । इस प्रकार हमारे समस्त कार्य अन्त में पूजा में परिवर्तित हो जायेंगे । यह एक सरल विधि है, जिसके द्वारा तुम्हारे विचारों की डोर ईश्वर से सम्बंधित हो जायेगी ।

(एक अभ्यासी के पत्र से)

❑❑❑

एकाग्रता

साधारणतः एकाग्रता का अर्थ मस्तिष्क की चेतन क्रियाशीलता का स्थिर हो जाना लिया जाता है । परन्तु एकाग्रता के अन्तर्गत जो भाव है उसकी यह सही अभिव्यक्ति नहीं है । इस एकाग्रता का तात्पर्य है बाह्य (शारीरिक) प्रयत्न, जो प्रत्येक को जाने-अनजाने रूप से करने पड़ते हैं । बहुधा व्यक्ति किसी विशेष स्थिति के, जिसे वह एकाग्रता कहता है, चेतन विचार के साथ आगे बढ़ता है । सामान्यतः व्यक्ति इसे (एकाग्रता को) एक अस्वाभाविक गहरी निद्रा के भाव के रूप में ग्रहण करता है जो इन्द्रियों के क्षणिक रुकाव के कारण उत्पन्न हो जाती है । यह चेतनाहीनता की दशा की उत्पत्ति किसी मादक औषधि की भान्ति चेतना शून्यता का प्रभाव उत्पन्न कर देती है । संभवतः इसी कारण तथाकथित महात्मा लोग बहुधा भाँग, चरस और गाँजे के आदी पाये जाते हैं ।

सामान्यतः गुरु अभ्यासी को एकाग्रता का अभ्यास, ध्यान के प्रथम सोपान के रूप मे बतलाते हैं और अभ्यासी उसी की प्राप्ति हेतु प्रयत्न करता है, परन्तु अनेक वर्षों के अथक श्रम के बावजूद भी वह कभी-कभी ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है । ऐसा क्यों है ? इस के कारण का सम्बंध अभ्यासी की किसी कमी से नहीं है बल्कि शिक्षक की भूल है जो पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर अभ्यासी को साक्षात्कार का मार्ग-दर्शन करता है । वास्तविकता यह है कि समस्त निधार्रित ढंग पूर्णरीत्या अस्वाभाविक तथा बनावटी हैं और लक्ष्य प्राप्ति के हेतु जितने साधन अपनाये गये हैं वे सभी पार्थिव व ठोस हैं । फल यह होता है कि सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होने के स्थान पर वे अपने मन में अधिक से अधिक ठोसता व स्थूलता धारण करते चले जाते हैं और अन्त में दुर्गम चट्टान की भान्ति हो जाते हैं ।

एकाग्रता को यदि मस्तिष्क के रुकाव के रूप में अभिव्यक्त किया जाये तो व्यक्ति को निश्चय ही अपने में मूर्छा (Coma) की दशा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना होगा । इस उद्देश्य के लिये जिस शक्ति की आवश्यकता है निश्चय ही वह शारीरिक शक्ति है जो पदार्थ के संयोग से कार्य करती

है । इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति हेतु की गई समस्त क्रिया, वास्तविक रूप से भौतिक प्रवृत्ति मात्र रह जाती है । उस स्थिति में एकाग्रता का सम्बंध स्थूल मानस के उस चेतन स्तर से सम्बद्ध हो जाता है, जिसकी क्रियाशीलता स्थूल शक्ति के प्रयोग से अस्थाई रूप से दब जाती है । व्यवहारिक दृष्टाँत इस बात के प्रमाण हैं कि जो इस प्रकार से विकसित दशा द्वारा समुन्नत हो चुके हैं वे आन्तरिक रूप से इतने स्थूल और ठोस हो जाते हैं कि वे पूर्ण रूप से सूक्ष्म से सूक्ष्मतर प्रभाव ग्रहण करने के लिये बेकार हो जाते हैं। वह एकाग्रता जो विचारों को बरबस दबाने से उत्पन्न होती है, मस्तिष्क पर अपना गहन प्रभाव छोड़ती है । शक्ति जो इस कार्य के लिए प्रयोग की जाती है, स्थूल शक्ति होने के कारण, स्वयं अपनी गुरुता उत्पन्न कर देती है । इस प्रकार एक शब्द में एकाग्रता की दशा, जो मूर्छा की दशा के भाव में व्यक्त की जाती है मूल रूप में ही त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि वह व्यक्ति को पदार्थ से सम्बंधित रखती है । इस अर्थ में एकाग्रता की समता उचित रूप में दलदल की दशा से होनी चाहिये जिस में से अपने को गहरे डूबने से बचाने हेतु बाहर निकलना बड़ा कठिन है, जब तक कि व्यक्ति अपने सब प्रयत्न न छोड़ दे । जो इस दशा से अग्रसर होते हैं वे स्थूलता सहित आगे जाते हैं । यह उनको भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति में कुछ सीमा तक सहायता कर सकती है और उनमें संमोहावस्था की शक्तियों का विवर्द्धन कर देती है, परन्तु आध्यात्मिकता के मार्ग में यह बिल्कुल सहायक नहीं है ।

अंतः एक जिज्ञासु के लिये उचित बात यही है कि वह एकाग्रता शब्द के भाव पर ध्यान दिये बिना अपने को ईश्वरीय प्रकाश में लय कर दे जो उस तक वास्तविक केन्द्र से आता है । उस दशा में एकाग्रता का प्रश्न ही बिल्कुल नहीं उठेगा और अभ्यासी उस स्थिति के साथ होगा जिसको न तो एकाग्रता के नाम से पुकारा जाता है और न अन्य नामों से । एकाग्रता की निकटता अपने सब झंझटों के साथ लाभप्रद नहीं है, यह अ-एकाग्रता की ही शक्ति है(जैसा कि मैं इसे पुकारता हूँ) कि वह अभ्यासी को ज्ञान के ऊँचे से ऊँचे मंडल में पहुँचा देती है । इस पथ से बढ़ने वाला अभ्यासी केन्द्र की शक्ति को धारण करता हुआ अपने को दिव्य प्रकाश से प्रकाशित करता है ।

अब अ-एकाग्रता शब्द कौन सी दशा प्रकट करता है ? प्रत्यक्ष रूप में यह विचारों की अतिशयता की दशा से सम्बंधित प्रतीत होता है परन्तु इसके दो पहलू हैं-प्रथम, जब विचारों का प्रवाह हमारे चेतन ज्ञान से सम्बंधित नहीं होता और दूसरा जब हमें इसकी पूर्ण चेतना होती है और हम इसका प्रभाव

ग्रहण करते हैं । विशेष रूप से उस स्थिति में जब कोई व्यक्ति कष्टों या पीड़ाओं के विचार से सम्बद्ध हो तब यह स्थिति निस्संदेह विरक्ति की है । प्रथम दशा में विचारों का प्रवाह बिना रुकावट के लगातार होता है परन्तु मस्तिष्क पर उन के किसी गहन प्रभाव की अनुभूति नहीं होती । सामान्य रूप से मस्तिष्क की यह दशा कभी-कभी ही क्षुब्ध होती है । इन दो पहलुओं को दृष्टि में रखते हुये मैं यह कह सकता हूँ कि अन्तिम दशा ही एकाग्रता की दशा के समान है केवल अन्तर यह है कि एकाग्रता का लक्ष्य संसार से विरक्ति और असन्तोष है, ईश्वरीय विचार नहीं । इस कारण इसे ठोस एकाग्रता माना जा सकता है जो हमारे अचेतन प्रयत्नों की शक्ति से स्थिर की जा सकती है । दोनों स्थितियों में प्रभाव एक समान ही होता है अर्थात् भारीपन, सुस्ती अथवा मन्दता । एकाग्रता शब्द कृत्रिमता के भाव को वहन करता है और इसी कारण उस के लिये प्रयत्न भी अनिवार्य है । जब विचारों का प्रवाह लगातार होता है तो वह बिना प्रयत्न ही होता है, और वह दशा उस दशा के समान होती है जिसे एकाग्रता कहा जाता है । अतः इसके लिये उचित शब्द लय है जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, और उचित प्रकार से, उचित ढंग से किये हुये ध्यान का प्रतिफल है ।

एकाग्रता जो ''लय'' के भाव से ग्रहण की जाती है वास्तविक दशा है । यह विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार की हो सकती है । किसी की एकाग्रता निम्न स्तर की है, किसी की उच्च स्तर की, और किसी की उच्चतम स्तर की । यदि इनमें से ''एकाग्रता'' शब्द जो उभयनिष्ट है, को निकाल दें तो क्या शेष रह जाता है - निम्न, उच्च और उच्चतम । इसी प्रकार व्यक्ति को ईश्वर की ओर चलना पड़ता है । दूसरी ओर यदि हमारे विचार एकाग्रता के विचार से संयुक्त रहें तो आंतरिक शक्ति हमें उन्नति के शिखर पर पहुँचने की प्रेरणा हेतु कार्यशील नहीं होगी । अतः उचित यही है कि विचार को संकल्प के रूप में बिना किसी पूर्व निर्णय और प्रयत्न का प्रभाव डाले, ग्रहण कर लेना चाहिये और एक सौम्य तथा स्वाभाविक रूप से बिना कृत्रिमता का दबाव या बोझ डाले हुये आगे बढ़ना चाहिये । सहज मार्ग में इस विधि का अनुसरण किया जाता है, जो वास्तव में आरम्भ से ही उस दशा से प्रारम्भ होती है जो अन्तिम स्थिति में परिव्याप्त है । यद्यपि आरम्भ में अभ्यासी को यदा-कदा इसकी झलक दिखलाई देती है, तथापि लगातार अभ्यास से वही दशा पूर्ण रूप से छा जाती है । इसी कारण ध्यान करते समय विचारों के लगातार आने पर भी सहजमार्ग पर आरूढ़ व्यक्ति एकाग्रता की अनोखी दशा का अनुभव करता है, जिसे सही रूप में लय अवस्था कहा जा सकता है । ❑❑❑

मेरी बेचैनी

जब लिखने बैठता हूँ तो विचारों की लड़ी ठीक नहीं बन पाती । कहाँ तक मैं अपने नुक़्स लिखूँ । दूसरे का मोहताज ही रहना पड़ता है । एक चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । चाहता यह हूँ कि सब मिलकर जो काम जिसके लायक़ है उसको करें । मगर लोगों में दिलचस्पी पैदा नहीं होती । जिस की ईश्वर-विषय में दिलचस्पी पैदा नहीं होती, तो वह मिशन के ही काम में दिलचस्पी पैदा करे, तो भी हो सकता है क्योंकि अगर Sincerity (अपनत्व, निष्कपटता) साथ है, तो ईश्वर-विषय में भी दिलचस्पी पैदा हो जाये । मगर पित्तामारी कोई करने ही क्यों लगा ? ग़रज़ तो मेरी ही रह गई है, और है भी ऐसी ही । इसलिये वास्तव में, मैं ख़ुशामद ही सब की करता हूँ कि शायद इसी चापलूसी ही से कोई फ़ायदा उठा ले । लोग इस इबारत को देखें तो वक़ाई हंसेंगे, मगर मैं अपनी तबीयत को क्या करुँ कि मैं सब की सब, सब में उंडेलना चाहता हूँ । मुमकिन है कि यही वजह हो कि लोग ग्रहण करने के लिए तैयार न होते हों । उंडेल तो मैं जाऊँगा ही, ख़्वा वह फिर छलक ही क्यों न पड़े और जिसमें उंड़िल गई तो फिर दूसरे बस छलकी हुई चीज़ पा सकेंगे । इसी लिये मैं चाहता हूँ कि सब में उंडेल दूँ और इस वक़्त में तो ऐसा है कि सब में, या जो चाहें उनमें, असल हालत उंडेली जा सकती है ।

जब मैं यह देखता हूँ कि मुझे अभी कितना सिखाना है तो मेरे होश उड़ते हैं और चाहता यह हूँ कि घोल कर पिला दूँ । मगर घोल कर पीने वाले भी इक्का-दुक्का मिलेंगे और यह मेरी क़िस्मत है । मुझे तो ऐसा एहसास होता है कि जितना गुरु महाराज ने सिखाया है; और सिखाना अब भी जारी है, इतना ही अगर मैं किसी को सिखाता हूँ, तो फिर भी जो मैं आगे सीख रहा हूँ, वह बाक़ी रह जाता है । अब क्या तरकीब हो सकती है कि वह भी बाक़ी न रहे ? वह यहीं है कि लोग अपनी उच्च लय-अवस्था पैदा करें और अगर कहीं बिल्कुल घुल मिल जावें तो फिर कहना ही क्या । और भाई जितना कि मैं अब और सिखाया जा रहा हूँ अगर कोई ऐसा बनने की कोशिश

करे तो इसकी तरकीब वही है कि मुझे अपने में लय होने के लिये मजबूर कर दे । अब इस की तरकीब भाई वही है – शग़ले राबता – जिसे मेधावी वर्ग कुफ्र समझेगा । अर्थात्, शग़ले राबता, शक्ल के ध्यान को कहते हैं) ।

मेरा मंशा यह है कि लोग इस बात पर आ जावें और उनका शौक़ इस हद तक जाग जावे कि वह इतनी तरक़्क़ी करने के लिये तैयार हो जावें । भाई मेरी समझ में नहीं आता कि लोग इन चीज़ों को लेने के लिये कमर क्यों नहीं कसते । मैं तो इस की कुछ क़ीमत भी नहीं माँगता । मुफ़्त दिया चाहता हूँ .... और भाई जब मुझ से यह चीज़ें कोई न लेगा तो मुमकिन है कि मैं उस को फेंक कर जाऊँ, इस कारण से, कि सम्भव है मेरे बाद ही कुछ लोग "छपरा भर सोहाग" उठा लें । बस मुझ में अगर कोई इच्छा है, जो अब तक नहीं छूटी, तो वह यही है और मुझे इस जज़्बे की रोक थाम करनी पड़ती है ।

मैं चाहता तो यह हूँ कि सब लोग लिपट लिपटाकर अपना काम बना लें । मगर बनता उतना ही है जितना ईश्वर को मंज़ूर होता है । यह ज़रूर है कि मेहनत रायगाँ (बेकार) नहीं जाती और इसी से कुदरत कामला मौजज़न (प्रवाहित) होती है । मगर मेहनत ही करना हर शख़्स के लिए मुश्किल मालूम होता है । कारण यह है कि शौक़ और तड़प नहीं । किसी ने अपने जिस्म (शरीर) को निगारख़ाना (श्रृंगारगृह) बना लिया और किसी ने अपने दिल को सराय- जहाँ पर हर मुसाफ़िर (यात्री) टिक जाता है ।

यह सब जानते हैं कि जिस्म एक दिन नहीं रहेगा और इसकी परवरिश तथा परदाख़्त (पालन-पोषण) उसी हद तक ज़रूरी है जितना कि वह अपने लिये और दूसरों की ख़िदमत के लिये ज़रूरी है । जब लोग मुझ से रुहानी ख़िदमत (आध्यात्मिक सेवा) नहीं लेते तो जिस्मानी ख़िदमत (शारीरिक सेवा) ही लेवें । मुझे जिस्मानी तकलीफ़ (कष्ट) तो रहती ही है-जहाँ एक लादी वहाँ सवा लादी । भाई सच कहता हूँ, इस शारीरिक तकलीफ़ में वह राहत (चैन) मिलती है कि जो बादशाहों को नसीब नहीं । मैं ग़िलाफ़ (आवरण) बहुत बदल चुका हूँ और अब अगर कोई ग़ौर से देखे तो उस को लिबासे उरयानी (पोशाक रहित असल ही असल) ही मिलेगा और यही बस आख़िरी ग़िलाफ़ है जिसके बाद (समय आने पर) दूसरा लिबास (पोशाक) पहनने की ज़रूरत न रहेगी । चाहता तो यही हूँ कि इसी लिबास को आप सब लोग ज़ेबतन (पहनें) करें । मगर जब तक मौजूदा लिबास की क़दर और अहमियत तथा उसकी तड़क-भड़क का ख़्याल मौजूद है, लिबासे उरयानी

असम्भव है । ....

बीमारी भी रूहानी (आध्यात्मिक) मर्ज़ों की एक दवा है । इसलिये कि इससे संस्कार साफ़ होते हैं और तकलीफ़ सहने के लिए बरदाश्त (सहनशीलता) की ताक़त बढ़ती है । जहाँ तक हिम्मत गवारा कर सके दूसरों की तकलीफ़ बचायें और ख़ुश रहें ताकि दूसरे लोग परेशान न हों । भाई हमारे यहाँ तो जो लोग ठीक रास्ते पर चल रहे हैं उनमें बीमारी के मौक़े पर ऐसी अच्छी हालत पैदा हो जाती है, जो अगर कोई ग़ौर करे तो दिल बहलाने के लिए काफ़ी है ।

सब कुछ कहो मगर लोगों को होश नहीं आता । कुछ ऐसे भी हैं कि यह उम्मीद लगाये बैठे हैं कि मैं एकदम से उन्हें सब कुछ दे दूँगा । लाखों जन्म गुज़र गये अब तक अपने वतन को वापसी नहीं हुई और अब भी इसका ख़्याल पैदा नहीं होता । मैं भला क्या कर सकता हूँ, जब कोई चलना ही नहीं चाहता । यह सब ईश्वर के हाथ में है, जब 'वह' चाहेंगे, यह भी हो जावेगा । मैं तो यही चाहता हूँ कि मुझे जो कुछ थोड़ा बहुत आता है इतना ही लोग सीख लें और इतना सीखने के बाद भी अगर उन की तड़प बुझ न चुके, जैसा कि होना चाहिये, तो मैं आज़ादी से कहने के लिये तैयार हूँ कि मुझ से ज़्यादा जानने वाले को तलाश कर लें, इसलिये कि मेरी ख़ुशी इसी में है कि लोग मुझसे बेहतर निकलें । मेरा क्या और मेरी हालत क्या ? ठीक तो गुरु महाराज को ही खबर है । इतना ज़रूर मैं जानता हूँ कि Infinite (अनन्त) में Swimming (तैराकी) ज़रूर कर रहा हूँ और उसका छोर नहीं, इसलिये मैं अपनी आत्मिक उन्नति के बारे में क्या राय क़ायम कर सकता हूँ, जबकि न मालूम अभी कितनी Swimming (तैराकी) बाक़ी है । एक बात मैं ज़रूर लिखे देता हूँ कि मुमकिन है मेरी थोड़ी बहुत हालत जो कुछ भी है, अगर कहीं कोई किसी समय में इस का समझने वाला मिल गया, किसी तरीक़े से, और लोग भी इस को मालूम कर सकें और ख़ास कर मिशन के Member (सदस्य) तो फिर उनको मुमकिन है, तमाम उम्र अफ़सोस से हाथ मलना पड़े । जाने क्या बात है कि मैं बराबर कहता भी रहता हूँ और लिखता भी रहता हूँ, मगर ज़्यादातर उन के जूँ नहीं रेंगती, और मैं तो भाई इसको अपनी ही कमज़ोरी कहूँगा और वाक़ई क़सूर भी मेरा ही है । यह हो सकता है कि मुझमें कुछ कच्चापन हो, जिसकी वजह से मेरे कहने सुनने का और तवज्जह का उनपर असर न पड़ता हो ।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी जाति का अभिमान ज्यों का त्यों है और

इसी हैसियत से वह मुझ को देखते हैं जिससे ऊँच को, नीच को देखना चाहिये । मैं तो भाई ऐसे तबक़े में पैदा हुआ हूँ जिसको ऊँचे कुल वाले को नीच समझना ही चाहिये । उनकी निगाह मेरे जिस्म और जाति पर रहती है; उस हालत पर नहीं रहती, जिससे उनको मदद लेना है । मुझे इसका कुछ खेद नहीं है । मैं तो वह च्यूँटी हूँ कि लोग मुझे अपने पैर से मलें, वह बर्र नहीं हूँ कि जिस को पकड़ने या अपनाने से वह काट खाऊँ और तकलीफ़ पैदा हो । जाति का अभिमान एक बहुत बड़ी रुकावट है और यह पहली चीज़ है जो दूर होनी चाहिये । ईश्वर को हज़ार हज़ार बार धन्यवाद है कि मैं सब से ऊँचे कुल में पैदा नहीं हुआ, जो यह कमज़ोरी मुझ में रहती । कबीर साहब ने क्या अच्छा लिखा है ।

नीच नीच सब तर गये, सन्त चरन लवलीन ।
जाति के अभिमान से, बूड़े सकल कुलीन ।।

❑❑❑

हमारी वर्तमान स्थिति और हमारा कर्तव्य

यदि मैं संसार की ओर देखूं तो इसको विपद ग्रस्त पाता हूँ । कुछ पीड़ा से दुखित मिलते हैं और कुछ प्रियजनों के बिछोह से दुखित हैं, और अधिकांश लोग प्रत्येक पग पर सफलता देखने को लालायित हैं । कुछ व्यक्ति अपने धन और भाग्य का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु धनवान पुरुष भी, जो धन उनके पास है उससे अधिक इकत्र करने के भार से अत्यन्त कष्टमय हैं । और इसके लिये कोई सीमा नहीं है । संसार में ऐसे धनवानों के उदाहरण हैं जो चिन्ता के कारण से उत्पन्न अनिद्रा व्याधि से पीड़ित हैं । यदि आप पशु जीवन देखें तो उन को भी कलेशयुक्त पायेंगे । बड़ी मछलियों के द्वारा निगल जाने के भय से छोटी मछलियों के बच्चे विपद में हैं । कुछ पक्षी बाज़ों का शिकार बन जाते हैं, चिड़ियाँ मक्खियों को खा जाती हैं । छिपकलियाँ कीटाणुओं को खा जाती हैं । और क्रमाँगत यह कार्य होता रहता है । अब दो धारें चल रही हैं । प्रथम एक दूसरे का विनाश करने के लिये और दूसरे शरीर को खा जाने की । मेरी दृष्टि से वह जो यहाँ पैदा हुआ है, अव्यवस्थित एवं कोलाहल में है, क्योंकि जैसे हम आयें, विरोधी तत्व वैसे ही प्रकट होते हैं । और वह उन में इतना जकड़ा हुआ है कि वह अपने को बंधनों में कसा हुआ पाता है । यदि तुम उस से उसे ढीला कर देने को कहो तो वह उस व्यक्ति की तरह, जो पेड़ से बंधा है, कहते हुये चिल्लायेगा कि मुझे पेड़ नहीं छोड़ता है । महाभारत में दक्ष ने राजा युधिष्ठिर से किसी नदी के किनारे कई प्रश्न पूछे; उन में से एक यह था कि संसार में कौन सी वस्तु विचित्र है । राजा युधिष्ठिर ने ठीक उत्तर दिया कि मनुष्य, मरते हुए मनुष्यों को देखते हैं, किन्तु वे नहीं सोचते हैं कि अन्त में उन को भी इस का रसास्वादन करना पड़ेगा । यदि कोई मुझ से यही प्रश्न वर्तमान वातावरण में पूछता है तो मैं इसका उत्तर यह दूँगा कि मनुष्य अपनी अव्यवस्था देखते हैं और इसपर भी वे असन्तुलित तकिया के सहारे सो रहे हैं । मैं भी इस का एक उदाहरण होता, यदि यह पत्र आज के दिन से २२ वर्ष पूर्व तुमको लिखा होता । जब मेरा तकिया झुर्रीदार था किन्तु सफ़ेद चादर से

ढका था । राजा भरथरी ने, जब उनमें ईश्वरी विचार धारा जाग्रत हो गई, अपने सर के नीचे आराम के लिये तकिया रखा, किन्तु कुछ क्षणोंपरान्त उन्हें ज्ञान हुआ कि यह तकिया (परीक्षा) अभिलाषा पूर्ण नहीं करेगा और उन्हें इसका परित्याग (एक तरफ़) कर देना चाहिये । यह उनकी आराम की अन्तिम वस्तु थी और इस का उन्होंने परित्याग कर दिया । अब उनके पास क्या था ? अकेले ईश्वर के ऊपर विश्वास । अब वह सन्यास के बिन्दु पर आये । उन्होंने हर वस्तु को अन्तिम बिदाई दे दी और पूर्ण रूपेण ईश्वर के अधीन हो गये । तपस्या का आनन्द प्राप्त करने के बाद अपने राज्य में पुनः वापस आने की शक्ति उन में थी । किन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया । इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने इस भिखारी पन के जीवन में कहीं अधिक शान्ति प्राप्त की । अब वह सभी सांसारिक इच्छाओं से मुक्त थे । धनवानों का महत्व उनके लिये अब नहीं था । क्या यह जीवन महत्वपूर्ण नहीं है; यदि यह ग्रहस्थ आश्रम में प्राप्त किया जाये । मनुष्य अपने कर्तव्यों को पूरा कर रहा है और उसके बराबर उसी समय में ईश्वर भक्ति में तल्लीन है । आप कहेंगे यह दोनों बातें असम्भव हैं और एक दूसरे के विरोधी हैं, किन्तु ऐसा नहीं है । कुछ समय बाद ईश्वरीय बुद्धि कार्य करना प्रारम्भ कर देती है । और यदि वह मनुष्य भक्ति प्रारम्भ कर देता है तो अपने मस्तिष्क के परे कर्तव्यों का पालन करता है । वह किसी भी मार्ग में हारने वाला नहीं हो सकता है यदि वह गृहस्थी के कर्तव्यों का पालन करते हुये ईश्वर साक्षात्कार की स्थिति तक जितना अधिक हो, ले आये । क्या आप यह बात पसन्द करते हैं कि आप के दोनों पहलू शक्तिशाली हो जायें और उस हंस की तरह ऊँचाई तय कर सकें जिसके बारे में कहा जाता है कि वह मानसरोवर का ही पानी पीता है, और वह पानी उसी के लिये है । सत्य कहता हूँ कि मैं मनुष्य को अव्यवस्थित और घबड़ाया हुआ देखता हूँ । और वह इसे महसूस करे या न करे मुझे बहुत महसूस होता है । मैं ईश्वर की प्रार्थना के अतिरिक्त उस के लिये क्या कर सकता हूँ कि उस की मानसिक शक्ति विचलित एवं बाधायुक्त न हो, मैं स्वयं इस प्रकार का कर्तव्य पूरा करता हूँ किन्तु मैं मनुष्यों को यह कर्तव्य दूसरों के साथ पूरा करने के लिए तैयार करना चाहता हूँ ।

❑❑❑

उपासना और प्रभाव

प्राणाहुति (Transmission) का प्रयोग किसी स्थान से कहीं के लिये भी किया जा सकता है; इस तरह से जैसे विचार कहीं से बैठे कहीं भेज सकते हैं । इसमें प्राण की शक्ति में जो असल चीज़ काम कर रही है, उसी से काम लिया जाता है । कुछ लोग ऐसे मिलते हैं, जिनमें ग्रहण-शक्ति नहीं होती है, उनमें इसी के द्वारा ग्रहण-शक्ति(संवेदनशीलता) उत्पन्न की जाती है । मगर इस का नियम यह है कि अभ्यासी सूक्ष्म गति प्राप्त करता चले । इसलिये भारी-पन या ठोसता जो अन्दर मौजूद होती है उस को खींच कर फेंका जाता है । जो लोग ध्यान करते हैं और सूक्ष्म की तरफ़ जा रहे हैं और साथ ही साथ ऐसी पूजायें करते हैं जिसका कि सम्बंध ठोसता से है, उसमें एक कठिनाई यह पड़ती है कि हम ठोसता निकालते जाते हैं और वह भरते जाते हैं, इसमें बहुत देर लगती है । यदि कोई मोक्ष चाहता है तो ईश्वर ही की मदद लेनी पड़ेगी, और जितना सूक्ष्म ईश्वर है, जब हम लगभग ऐसे ही सूक्ष्म हो जाते हैं तो उसके अर्थ ईश्वर के साथ तादात्म्य या एकाकारिता प्राप्त करना हो जाता है । इसीलिये मैंने अपने एक लेख में लिखा है कि हरी लकड़ी जैसे चाहें झुका लें और जब लकड़ी सूख जाती है तो आग दिखाने की आवश्यकता पड़ती है । जो लोग ठोसता से भरे पड़े हैं और मूर्ति पूजन, जिसका तरीक़ा कि लोगों को मालूम नहीं-या मंत्र का जाप जो हर एक करने के लिए तैयार हो जाता है । मगर उसका असल तरीक़ा किसी को भी मालूम नहीं, उनमें यह चीजें पैदा हो जाती हैं और करते-करते वह बिल्कुल फ़र्नीचर (Furniture) हो जाते हैं । जिसका झुकाना मुश्किल हो जाता है । स्वामी-विवेकानन्द ने लिखा है कि मोक्ष के लिये सिवाय राजयोग के कोई दूसरा तरीक़ा नहीं है ।

अपने यहाँ लोग साहित्य भी नहीं देखते जिसमें कि मंत्र जाप का तरीक़ा लिखा है जो बिल्कुल योग हो जाता है ।

❑❑❑

उद्देश्य

पत्र तो आप का एक मुद्दत से नहीं आया, छुट्टियों में मुलाक़ात ज़रूर हो गई थी । बवक़्त मुलाक़ात अक्सर कभी मैं अपने आप को देखता था और कभी आँअज़ीज़ (प्रियवर) को । यह तौला नापी यहाँ तक रही कि मैं आँअज़ीज़ से कुछ कह न सका । तराज़ू में जब बाँट रक्खा जाता है तब चीज़ के भार का पता चलता है और बाँट सर ब-मोहर माना जाता है अर्थात् जब उसमें ईश्वर नामी मोहर लगी हो तब ही सच्चा बाँट है । तो भाई, यह मोहर उस चीज़ में क्यों नहीं लगाते ताकि तुम्हारी तौल भी होती चले और तुम्हें मन, सेर, छटांक का पूरा ज्ञान होता चले । भार से मतलब मेहनत और अभ्यास से है और मोहर से सिखाने वाले का ख़्याल । यह सब चीज़ें जब ठीक हों तब ही कबीर का मसला सही होता है -

''क़द्दू बूड़े सिल उतराय,
ओलती का पानी बड़ेरी जाये ।

एक पहलवान वरज़िश करता है तो उसका शरीर पुष्ट और शक्तिवान बन जाता है परन्तु एक मज़दूर और लकड़हारा भी दिन भर मेहनत करता है मगर उसका शरीर पहलवान का सा नहीं बन जाता । कारण यह है कि पहलवान का ख़्याल पुष्टता और शक्ति प्राप्त करने का है और मज़दूर या लकड़हारे का केवल चार पैसे पाने का । इसलिये पहलवान को ताक़त मिलती है और मज़दूर को चार पैसे । यही बात अभ्यास में है कि ध्येय सामने होना चाहिये और फिर उसके लिये मेहनत । मेहनत यदि बेगार के रूप में की जावे तो उससे कोई फ़ायदा नहीं । इसमें दिल और जज़्बा पैदा होना आवश्यक है । Deep Meditation (गहनध्यान) के माने यही हैं कि पूरे तौर से लगाव पैदा करके हमातन ध्यान करते हुये ध्येय की तरफ़ निगाह रहनी चाहिये । यह आवश्यक नहीं कि ध्यान करते समय उस को बार-बार याद किया जावे, बल्कि, तबियत में ध्येय-प्राप्ति के लिये जोश बढ़ाओ, और तड़प पैदा होनी चाहिये । अगर यह नहीं कर रहे हैं तो मज़दूरी भी नहीं, केवल बेगार है ।

हमने मकान बनाया मगर ईंट टेढ़ी-मेढ़ी लगी तो फ़ायदा क्या ? हमें तो भाई अपना मकान बनाना है । तरकीब यह है कि यह मकान बिगाड़ो और वह बनाओ या इस घर के बिगाड़ने से मेरा मतलब यह है कि इस घर (अर्थात् जिस्म, शरीर) को अपना न समझो बल्कि अपना उसको समझो जहाँ मुद्दतों रहना है । इस घर में आप बहुत रहे तो सौ वर्ष और उस घर में समय का अन्दाज़ नहीं । वही ऐसा घर है जहाँ क़याम (ठहराव) की हमेशगी समझ में आती है ।

अच्छा मान लीजिये, आप इस घर को अपना समझ लें तो कब तक ? आख़िर अन्त तो इसका होना ही है । इस के बाद फिर दूसरा ऐसा ही घर मिलेगा । जिस को बनाने और संवारने का आप को ख़्याल होगा । यह चक्र (cycle) चलता ही जावेगा । अब बताइये जो घर बराबर बदल रहा है उसे आप अपना कह पावेंगे ? कदापि नहीं, इसलिये कि उस का किराया भी आप को देना पड़ता है और लेस-पोत भी करनी पड़ती है । किराये से यह मतलब है कि जिस्म के साथ ऐसे ताल्लुक़ पैदा हो जाते हैं जिसमें समय और शक्ति (Energy) ख़र्च होती है । तो वास्तव में, हमने घर बनाये परन्तु वह अपने न हुये । तो भाई बड़ी ग़लती होगी यदि आप इसकी और झुकें और उस घर के बनाने की तरफ़ राग़िब न हों (रुचि न लें) जिस की न ख़बरगीरी करना है और न उस के कारण दूसरों से बंधन । इस की ओर ध्यान देना चाहिये और मेरा असल अभिप्राय समझना चाहिये । मैं नहीं चाहता बेकार समय लगे इसीलिये यह लिख दिया ।

लेकिन भाई हक़ीक़त तो यह है कि स्वतः मनन (Self Thinking) से बुद्धिमत्ता (Intelligence) बढ़ती है । पर यहाँ तो लोगों को इतनी फुरसत कहाँ ! और फिर फुरसत भी हो जाती अगर शौक़ पैदा हो जाता । मैं चाहता तो यही हूँ कि मुझे जो कुछ थोड़ा बहुत आता है अपनी ज़िन्दगी में ही सबको सिखा जाऊँ, उस के बाद वह फिर उस से आगे तरक़्क़ी करते रहें । मगर एक, दो के सिवाये कोई हिम्मत करके सामने आता हुआ दिखाई नहीं देता । कितनी सहज चीज़ और कितने सहज तरीक़े से बताई जाती है, फिर भी लोग अपने आप को इस हद तक तैयार नहीं करते । यह ज़रूर है कि ज़्यादातर ऐसा ही देखा गया है, अभी तक तो ऐसी तरक़्क़ी करने वाले इक्का-दुक्का ही मिलते हैं ।

❑❑❑

हम बनें कैसे

आपके विचार-जनता की सेवा, उस के चरित्र को ऊँचा उठाना- मुझे बहुत अच्छे लगे और मैं भी यही चाहता हूँ । अब प्रश्न यह है कि हो कैसे ? अगर इस पर मैं अपने विचार प्रकट करूँ तो वे वही पुरानी बातें होंगी जैसा कि मनुष्य कहते चले आये हैं । अब इस का मैं नई रोशनी में जवाब दूँ तो यही होगा कि अपने आप वैसे बन जाओ जैसा कि आप दूसरों को बनाना चाहते हैं । अब प्रश्न होता है कि बनें कैसे और जब यह भी हल हो जाता है तो सवाल यह पैदा होता है कि ऐसा बनाये कौन ? बहुत सोचने के बाद यह पता चलता है कि यदि हम किसी प्रकार से अपनी Originality revive कर लें (मूल-अवस्था प्राप्त कर लें) तो फिर सब काम बन जाते हैं । Individual (व्यक्ति) से Mass (समष्टि) बनता है । अगर एक जगह दरिया(नदी) बह रहा हो तो उसकी ताज़गी (Freshness) दूर-दूर तक असर करती है और कहीं वह दरिया समुद्र बन जाये तो उस का असर मीलों तक जाता है । यही नहीं उस के पानी के द्वारा हज़ारों मील तक ज़मीन उपजाऊ हो जाती है । बस मेरी छोटी सी समझ में समुद्र बनने की कोशिश करनी चाहिये ।

अगर हमने समुद्र बनने की कोशिश की और मान लीजिये कि हम न बन सके तो इस बड़ी कोशिश का परिणाम यह होगा कि हम दरिया तो बन ही जायेंगे । अब हम दरिया कैसे बनें ?

इसकी बड़ी आसान तरकीब है- अपना Source (स्रोत) अपने Reservoir (केन्द्रीय कोष) से Connect कर दें (जोड़ दें) । अब Connect (सम्बद्ध) कैसे हों ? यह तभी सम्भव है जब कोई आदमी ऐसा मिल जाये जो Connect कर सके (जोड़ सके) । हमें ऐसे आदमी की तलाश क्यों है, वह इसलिये कि Reservoir (केन्द्रीय कोष) की परनालियों को अवरुद्ध कर दिया है और हम इतना बर्हिमुख हो गये हैं कि हमने अपनी कुल शक्ति उसमें ही लगा दी है । और अब इतनी ताक़त नहीं रही कि इस को बिगाड़ कर उस को बनाना शुरु करें ।

अगर हम Realisation (साक्षात्कार) पर आते हैं तो जड़ भरत का उपदेश याद आता है जो उन्होंने राजा रघु को दिया था कि ईश्वर प्राप्ति न जप से होती है और न तप से, बल्कि उस व्यक्ति के ज़रिये से होती है जिसे Realisation (साक्षात्कार) हो चुका हो । जब तक हमारी वृत्तियों में Transformation (आमूल परिवर्तन) होकर Originality (मौलिकता) नहीं आ जाती तब तक हम दूसरों पर असर नहीं डाल सकते । अगर ऐसे दो दर्जन आदमी जो बिल्कुल Original हो गये (असली हालत में आ गये) हों, भारत में भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर काम करें तो भारत कुल बीस वर्ष में रुहानियत से भर जायेगा ।

अब आप कहेंगे कि ऐसे आदमी कहाँ मिलें जो यह सब बातें सिद्ध करा दें ? मैं इस के उत्तर में कहूँगा कि ऐसे शिष्य भी नहीं मिलते । इससे पहले या इस बीच में हम अगर सड़क के कंकड़ पत्थर ही अलग कर सकें तो इतना ज़रूर हो सकेगा कि अन्धे ठोकर खाकर गिरने से बच जायेंगे ।

आपने यह पढ़ा होगा कि Polar changes (ध्रुवों पर परिवर्तन) होते रहते हैं-कहीं ज़्यादा सर्द चीज़ और ठंडी हो जाती है, और कहीं ज़्यादा ठण्डी चीज़ में ठण्डक कम हो जाती है । मास्को इतना ठण्डा नहीं है जितना बीस साल पहले था । मनुष्य का हर सेंटर पोल बना हुआ है और वह मुख़्तलिफ़ क़िस्म की तब्दीलियाँ (विभिन्न प्रकार के परिवर्तन) पैदा करता है । जब बहुत से changes (परिवर्तन) पैदा हो जाते हैं तब उसमें सन्तुलन (balance) नहीं रहता है जिससे हर चीज़ गड़बड़ चलती है क्योंकि different channels (विभिन्न रास्तों) में different action (विभिन्न-क्रियायें) पैदा हो जाते हैं , इच्छा शक्ति divided (बट जाती है) हो जाती है । अब आप को इन चीज़ों को सम्हालना है तब आप जो चाहते हैं कर सकेंगे ।

(एक जिज्ञासु के पत्र के उत्तर से)

❑❑❑

संस्कार

मुझे आप से बहुत काम लेना भी है, और आप पर बहुत काम करना भी है । इसलिये लेना भी है और देना भी है । अंग्रेज़ी में एक मसल है: Exchange is no robbery । आप ख़ाली समय में ईश्वर की याद तो करते ही होंगे, उसमें इतना भी note करते चलें कि कुछ तबदीलियाँ (changes) हो रही हैं । अभी मैंने इस की शुरुआत ही की है, आगे आप को पता लगाने की आशा है । इसलिये अन्तरिक्ष काम के लिये भी बम्बई में आप को बनाना है । यह होता है कि कभी ध्यान में तबीयत अभ्यासी की लगती है और कभी नहीं लगती । इसकी वजह है कि संस्कार जो अपने Field में जमे हुये हैं, वह निकलने के लिये दिल की तरफ़ आते हैं । इस लिये कि ध्यान द्वारा दिल पर vacuum पैदा हो जाता है और जब तक संस्कार सब न निकल जायें तब तक मोक्ष नहीं हो सकती । और हम वैसे भी निकालते रहते हैं । इस पर मैंने एक लेख सहज-मार्ग पत्रिका में कहीं पर लिखा है ।

ध्यान में जो भी हालत पैदा होती है, चाहे अभ्यासी को अच्छी लगे, चाहे ख़राब, यह सब लाभदायक है । आध्यात्मिकता बड़ी सहल चीज़ है, और इसमें ज़्यादा समय नहीं लगता, सिर्फ़ Faith व भक्ति बढ़ाना चाहिये और भक्ति बार-बार याद करने से पैदा होती है ।

(एक अभ्यासी को लिखे पत्र से)

❑❑❑

इरादा

चाहता तो मैं यह हूँ कि आप सब रुहानियत में आफ़ताब निकलें, परन्तु यह सम्भव कब है ? जब कि आप ज़मीन का साया सूर्य पर न पड़ने दें । और यह कब मुमकिन है ? जब कि आप अपने चलने का दायरा ऐसा बना लें कि आप की रवानी (चाल) सीधी हो जावे । और यह दायरा (orbit) कब बन सकता है और रवानी सीधी कब हो सकती है ? जब कि पूरे तौर से ठिकाने का ख़्याल रहे ! और ठिकाने का ख़्याल कब हो सकता है ? जब कि आप उसके हो रहें ! और आप कब उसके हो सकते हैं ? जब आप अपने आप को खो बैठें । अपने आप को कब खो सकते हैं ? जबकि सिवाय उसके और किसी का ख़्याल दिल में न रहे ! और यह चीज़ कब मुमकिन है ? अभ्यास करने से ! अभ्यास कब मुमकिन है ? मुहब्बत और दिलचस्पी से ! और मुहब्बत व दिलचस्पी कब पैदा हो सकती है ? बराबर ख़्याल से ! बराबर ख़्याल कब मुमकिन है ? इरादे से ! और इरादा बाँधना कब मुमकिन है ? जबकि आप अपने आराम को कुरबान करने और सुस्ती को त्यागने पर कमर कस लें !

हमारे यहाँ लोगों में एहसास पैदा नहीं होता, वजह यह है कि उस तरफ़, अपने आप को लगाते ही नहीं, दुनियादारी के मामले में वह बहुत sensitive मिलेंगे, रुपया पैदा करने में बहुत ही अक़्ल खुली हुई मिलेगी, बात यह है कि उस तरफ़ उन की लगन है, इसलिये बारीकियाँ समझ में आती हैं और इस तरफ़ लगन का पता ही कहाँ । अगर बहुत मेहरबानी की, तो सतसंग के वक़्त संलग्न हो गये, बाक़ी दिन फिर कोई ताल्लुक़ नहीं रखा और न ही यह परवाह की कि वह बातें जीवन में उतारें जो ब्रह्म विद्या में मददगार हों और वह छोड़ें जो बाधक हो रही हों ।

बुद्ध और जैन सभी दर्शन इस बात पर ज़ोर देते हैं कि जैसा बनना चाहिये वैसा बनने की कोशिश करें, उसूल और नियमों पर पूरा ज़ोर दिया है और उनकी पाबन्दी, रुहानी तरक़्क़ी की निशानी बताई है । और अपने यहाँ देखिये

कि किसी बुराई को छोड़ना ही नहीं चाहते । बात क्या है कि ध्येय प्राप्ति की तड़प नहीं, वरना सब कुछ न्यौछावर करके लग जाते । तबीयत का झुकाव जिस तरफ़ हो गया वहाँ की बातों का एहसास होने लगता है और एकाग्रता बढ़ती है । जब एकाग्रता बढ़ती है तो संयत्र हो जाता है, जहाँ यह चीज़ पैदा हुई कि हालत का एहसास शुरु हो गया । मगर भाई इस तकलीफ़ में पड़े कौन । ऐसी हस्तियाँ ख़ास ही ख़ास पैदा होती हैं जो मर मिटने के लिये तैयार हों और भाई उन्हीं पर हक़ीक़त बेनक़ाब होती है । भाई, यह शौक़, तड़प और प्रेम, कमाल पर पहुँचा देते हैं । हमारे यहां के सब अभ्यासियों पर हालत ज़रूर गुज़रती है, मगर लगन न होने की वजह से एहसास नहीं होता, जिसकी शिकायत वह मुझे करते हैं ।

मगर जब किसी से कहता हूँ कि मुशाहदा (observation) और एहसास की ताक़त बढ़ाओ तो वह कह देता है कि कोशिश करता हूँ मगर एहसास होता ही नहीं । मेरी समझ में नहीं आता कि वह कोशिश कैसी जिससे नतीजा मतलूब बरामद न हो । हम जब अपने घर के मामलात को सोचते हैं तो उसके हर नुक्ते ख़ूब समझ में आ जाते हैं । बात क्या है, कि हम इस में हमातन मसरूफ़ हो जाते हैं, यहाँ तक, कि जब तक उसका हल नहीं मिल जाता हम को चैन नहीं पड़ता, इसलिये कि वह चुभन दिल में होती है । अभ्यासी जब अपनी हालत नज़र में रखे और देखे तो मुमकिन ही नहीं कि पढ़े लिखे आदमी की समझ में न आजाय । हर हालत पर अगर दिल से एकाग्र हो और साथ ही साथ अमल भी करता चले तो मुमकिन ही नहीं कि मुशाहदा (observation) असल एहसास न करादे । मगर भाई, यह सब बातें शौक़ पर निर्भर हैं और भाई शौक़ भी एक बड़ा उस्ताद है ।

❑❑❑

सहज-मार्ग

बड़े-बड़े महात्मा और सन्त इत्तफ़ाक़ से नहीं आ जाते बल्कि ये उस समय पर आते हैं, जब दुनिया को बहुत ज़्यादा उनकी ज़रूरत होती है । जिस वक़्त अन्धकार छा जाता है यानि कि ज़हरीला माद्दा विचारों के द्वारा वहाँ आसमान में समा जाता है, उस वक़्त उसकी सफ़ाई की बेहद ज़रूरत होती है । वरना परिवर्तन किसी हालत में नहीं हो सकता ।

चुनाँचे ऐसा वक़्त था जब समर्थ गुरु श्री रामचन्द्र जी महराज, फ़तेहगढ़ निवासी, ऐसे समय पर आये, जब उन की बेहद ज़रूरत थी । उन्होंने वो-वो काम किये ऐसी-ऐसी रिसर्च दी है कि लोग आगे चलकर सोचेंगे तो दंग रह जायेंगे । सब से पहली बात उन्होंने यह बतलायी है कि Transformation (या टेन्डेंसियों को अच्छा कर देना) सिर्फ़ दैवी चेतना ही कर सकती है, परामानसिक (Supramental) नहीं कर सकता । हालांकि श्री अरविन्दजी इसकी कोशिश ही करते रहे कि हम Supramental किसी तरह ज़मीन पर पहुँचा दें, मगर वे कामयाब नहीं हुये । यही एक चीज़ है जिसे दिव्य चेतना कहते हैं । इसी से आदमी बदल सकता है और पूरे तौर पर Transformation हो सकता है ।

इसके आगे उन्होंने यह बात बताई है कि अगर मोक्ष किसी तरह लोगों को हासिल करना है तो सिवाय योग के और कोई चीज़ नहीं हो सकती । योग के माने सिर्फ़ यही होते हैं कि अपनी मानवीय चेतना को दिव्य चेतना से जोड़ दें । बस इसी को योग कहते हैं । अफ़सोस यह है कि हमारे यहाँ पूजा करने वाले तो बहुत से लोग हैं, और करते भी हैं, मगर किसी ने आज तक यह नहीं सोचा कि क्या वे उस से जुड़ भी गये हैं । बल्कि मेरा तो यह ख़्याल है कि वे उससे अलहदा ही होते चले जाते हैं । यह एक अफ़सोस की और बिगड़े हुये ज़माने की बात है । यह भी लोगों का अनुभव है, तीस-तीस वर्ष तक बराबर पूजा करते रहे, उन में वे सब पूजाऐं शामिल हैं, जिसमें कि मूर्ति पूजन और जप भी शामिल है । मगर मेरे पास ऐसे बहुत से लोग

आये हैं और उन्होंने यही कहा कि तीस वर्ष की पूजा की मेहनत के बाद भी हम तीस सेकण्ड तक दिमाग़ को शान्त नहीं रख सके । मगर फिर भी उसे करते जा रहे हैं । यह बिगड़े हुये ज़माने की बात है ।

जब किसी पर अदबार या ज़वाल या Downfall होता है तो सब से पहले विवेक शक्ति बिगड़ जाती है । उसके बाद उस में ख़ौफ़ पैदा होता है । जहाँ ये चीज़ें पैदा हों वहाँ बिल्कुल तहस-नहस हो जाता है । ये चीज़ हम में काफ़ी तौर पर आ चुकी है, अब परिवर्तन की ज़रूरत है । अफ़सोस यह है कि कहते भी हैं, सुनते भी हैं । मगर यह बात उनके दिल में पैदा नहीं हुई उसे छोड़ें या न छोड़ें । आदत या Tendency उनकी ऐसी हो गयी कि उन्हें छोड़ते हुये यह ख़्याल पैदा होता है कि हमारे बच्चों को या किसी को नुक़सान न पहुँच जाये । यह उनका खुद पैदा किया हुआ है कोई दिव्य ख़्याल नहीं है ।

ज़माना ज़रूर ऐसा आ रहा है कि रफ़ता-रफ़ता लोग इसी योग साधना पर आयेंगे और इसी चीज़ को अपनायेंगे जिसे सहज मार्ग पद्धति कहा गया है ।

अब मैं आप को थोड़ी सी सहज मार्ग पद्धति की विशेषता बतलाता हूँ । ये तो मैंने कहा है कि ये Divinity ही आदमी को बदल सकती है और दुनिया में कोई चीज़ नहीं कर सकती । अब ये Divinity हम पैदा किस तरह करें । इस का सबसे पहला तरीक़ा ये है कि अगर किसी के हाथ में प्राणाहुति शक्ति है तो इसको इस्तेमाल करे और वो आदमी ऐसे आदमी के पास जाये जो अपनी ताक़त से अपनी प्राणाहुति शक्ति द्वारा उस आदमी को बदलने की कोशिश करे । दूसरा तरीक़ा यह है कि हम अर्ध-चेतन-मानस में वो ख़्याल या विचार ले लें, जिसकी इसको Divinity जोड़ने के लिये या योग में परिणीत करने के लिये ज़रूरत है । इतना गहरा ख़्याल हम अर्ध-चेतन-मानस में बना लें कि दूसरा ख़्याल ही न रहे । यह तरीक़ा तो उनका है जो उनके करने का है ।

अब इस के बाद इस से क्या फ़ायदा होता है । हम लोग दिल पर ध्यान देते हैं, दिल पर ध्यान देने का मतलब यह है कि यह एक केन्द्र है । केन्द्र कहते हैं Middle Portion को । फूल में केन्द्र होता है । हर चीज़ में केन्द्र होता है और यह उसकी life होती है । लिहाज़ा हमारी life सिर्फ़ हृदय है । हम हृदय पर ही साधना इसलिये करते हैं कि हमारे में जो कुछ भी अच्छी बातें पैदा हो रही हैं वो सब ख़ून में प्रवेश कर जायें ताकि जब ख़ून का

दौरा हो तो उसी हालत में उसका सब असर ले लें । उसका यह नतीजा होता है कि हमारी सारी प्रणाली में दैवीकरण होता चलता है ।

इसके बाद करते करते इसमें तीन चार हालतें ऐसी तबदील होती हैं । मैंने इसको ईश्वरदर्शन की हालत बतलाई है । यह पता चलता है कि हर चीज़ में एक कम्पन है और उसे हम दिव्य कम्पन कहते हैं । हर चीज़ में दिव्यता मौजूद है । उसमें एक अजीब सी, एक अचम्भे की हालत आदमी में पैदा होती है । उसके बाद इससे और ऊँची हालत पैदा होती है, जो उस वक़्त सिर्फ़ अर्ध-चेतन-मानस में यह ख़्याल मौजूद रहता है । मगर इस का भास कम रहता है । इसी तरीक़े से हालत तबदील होती जाती है । आख़िर पर हम चक्र द्वारा चलते हुये, उन की सब हालतों को अपनाते हुये उसमें लय अवस्था को प्राप्त करते हुये उस हालत तक पहुंच जाते हैं जहाँ दिव्यता का भास रह जाता है । उसके सिवाय और कुछ नहीं है, माया का भी अभाव है । उस क्षेत्र में पहुंच जाते हैं जहाँ माया का हम पर कोई असर नहीं होता । Divine और Divinity हमारे शरीर में प्रवेश करता चला जाता है और इस तरीक़े का Divinization करते चले जाते हैं । जब इन सबको पार कर लेने के बाद जिस वक़्त हम असलियत में पहुंचते हैं, उस समय भी दो तीन हालतें होती हैं । Divine Liberation तो हर जगह मौजूद ही है । मगर जितना आगे चलते जाते हैं उतना धीरे होते जाते हैं । Divine Wisdom, Divine Action और Vision of Absolute, ये सब चीज़ें पैदा होती हैं । जब इसको पार कर लेते हैं तो उस लय अवस्था की हालत पैदा होती है जिस को ब्रह्म-लीनता कहते हैं । उसको पार करने के बाद आगे कुछ और भी है जिसको अब बताना बेकार है ।

❑❑❑

वेद की वैज्ञानिक व्याख्या

वैज्ञानिक व्याख्या (Scientific explanation) आप मुझसे पूछते हैं। भला मैं क्या और मेरी बिसात क्या ! एक सीधा सादा बेपढ़ा इन्सान हूँ, और उससे आप God (ईश्वर) के अर्थ पूछते हैं, मुमकिन है कि वह Dog (कुत्ते) के अर्थ बता जावे। मेरे पास तो कुछ इल्म ही नहीं रहा। मौलाना रूम के शब्दों मेंः-

''मन ज़े क़ुरआँ मग़्ज़ रा बरदाश्तेम
उस्तख़्वाँ पेशे सगाँ अन्दाख़्तेम''

(मैंने तो क़ुरान से उस का मग़्ज़ (सार तत्व) उठा लिया, और हड्डियाँ कुत्तों के आगे डाल दीं)

किन्तु भाई प्रियतम जिस तरह चाहे रेंगा ले। रेंगना भी प्रेमी को प्रियतम ही सिखाता है और रेंगने की प्रेरणा और शक्ति (Spirit) उसको प्रियतम से ही मिलती है। इसलिये भाई जिस चाल में चलो- अगर ठीक है तो इसमें आप की तारीफ़ और अगर ग़लत है तो आप की बदनामी।

अब इस को यदि आप व्यापक दृष्टि से देखें तो फिर यही समझ आवेगा कि हम को रेंगना वहीं से मिला है जिसकी याद भक्ति करने वाले को तड़पाती रहती है। जो चीज़ पहुँची या उतरी है उसका विस्तार या पसारा हो गया। जो देखी या अनुभव में आई, उसकी हालत ऐसी बन गई जैसे कि एक बिन्दु से जिसमें पानी भरा हो, जब छलक होती है तो उसका हुजम (Volume) बढ़ता ही जाता है। अब इस छलक को ग्रहण करने वाले हमारे ऋषि मौजूद थे और उनकी निगाह भी उस तरफ़ थी, इसलिये कि ज़माने की शुरुआत थी और संस्कार का उनमें उस वक़्त उतना गुज़र न था। जैसी चीज़ छलकी वैसी की वैसी उनके अनुभव में आ गई। यह ज़रूर हुआ है कि किसी की निगाह उस मोटी चीज़ पर पड़ी जो घनत्व ज़्यादा लिये हुये थी और किसी की उस पतली धार पर पड़ी जिसमें छलकाव की मात्रा कम थी। मोटी चीज़

क्या हो सकती है-वह बातें जो हमारी और सब की ज़रूरत के लिये थीं । अतः वह उसी में पड़ गये और सूक्ष्म बातें सूक्ष्मदर्शियों के लिए छोड़ दीं । ज़िन्दगी रखकर ज़रूरतें तो होती ही हैं । आग, पानी, हवा, आदि को समय समय से अपनी गति के अनुसार काम करना ही चाहिये । उन्होंने इन चीज़ों को लिया और अपने में घुमाव की सूरत ऐसी पैदा की कि जिस जगह पर उस मोटी धार का असर है वहीं से हम उस को हरकत (गति) दें । अतः अग्नि, वायु आदि को हरकत वहीं से दी जहाँ से उसका ज़्यादा सम्बंध था और इच्छित परिणाम प्राप्त होता था ।

विचार इस नाचीज़ का यह है कि सब से पहले उनकी निगाह अनासिर (मूल भौतिक तत्वों) पर पहुँची, क्योंकि रूहानियत (आध्यात्मिकता) की इस्तेदाद (योग्यता) उनमें मौजूद ही थी । अतः आप देखें कि सब से पहले वही मन्त्र लिखे हैं जिनसे अपनी ज़िन्दगी के क़याम (स्थिरता) के लिये नतीजे (निष्कर्ष) उत्पन्न हों जो भी एक ज़रूरी चीज़ है । अब जब मूल तत्वों पर जा पड़े और ज़माना ज़्यादा गुज़र चुका था, तो फिर यह होश आया कि उस पर रहते-रहते ख़्याल का focus (केन्द्रीप्रकरण) इस पर होकर रह गया । आगे फिर उन्होंने इस असल धार पर, जिस को रूहानियत कहेंगे, सोचना शुरु किया, जिसका नतीजा उपनिषद् हैं और उनकी शुद्ध चिन्तन (right thinking) के कारण हैं ! अब क्या आप इस से यह नतीजा नहीं निकालते कि विकास (Evolution) की शक्ल उसमें क़ायम ही रही और दिमाग़ी दौड़-धूप की यह तवारीख़ (History) बनी ।

यह तो उनवान (विषय) है और एक बेपढ़े की तहरीर (लेख), और ख़याली पकाव का तलछट । अब नफ़्से मतलब (वास्तविक अभिप्राय) पर आता हूँ । वेद वास्तव में वह हालत है जो संसार की सृष्टि से पहले थी, जिसका कैफ़ (आनन्द), ईश्वर वह समय लावे, तो आपको मिलेगा । अतः यह ठीक है कि संसार की सृष्टि होते ही वेद विद्यामान हो जाते हैं, जिसको पुस्तक के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है । यूँ कहें कि हालतों को एक जामा पहना दिया गया है । अब उस समय क्या था ? - वही मथने वाली हालत और जौहर की पैदाइश (मौलिक तत्व का आरम्भ) । जिस चीज़ से यह जौहर बना वह मथने वाली क्रिया का नतीजा था, गोया उस जौहर का सम्बंध उस चीज़ से है जिसके मथने का यह नतीजा है । अब नतीजा जो कुछ भी हुआ और उसमें जो भी सूरतें पैदा हुईं, उन का ख़्याली ठहराव अपने असल पर ज़रूर रहा । और वह जो कुछ भी हालत थी वह Scientific

(वैज्ञानिक) कहना चाहिये, इसलिये कि ऐसा कभी नहीं हुआ कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बन गया हो । मैं Scientific (वैज्ञानिक) बात इसी को समझता हूँ कि जो भी उसका तजुर्बा (Experiment) करें, नतीजा वही निकले । अब नतीजा जो कुछ भी हुआ, उस की असल की तरफ़ जब निगाह गई तो असल चीज़ का इल्म (ज्ञान) ले ही आई । अब इन धाराओं में जो कुछ भी उन के मन्थन से Dim Sound (धीमी आवाज़) पैदा होती है उसको आधार मान कर वैदिक ऋषि उस की खोज में रहे जिसकी कि यह आवाज़ थी । अतः ऋग्वेद में-जितना कुछ मैंने पढ़वाकर सुना है अर्थात् शुरु का कुछ भाग-इसी शब्द और आवाज़ से काम लिया गया है । गोया यह कुंजी थी असल चीज़ (वास्तविक तत्व) को खोल देने के लिये । अब जब कुंजी उनको मिल गई और असल चीज़ खुलने लगी, तो फिर दूसरा फेरा शुरु हुआ । या यूँ कहो कि एक नया अध्याय आध्यात्मिक उद्देश्य के लिये खुल गया और विचार की दौड़-धूप और अधिक होने लगी । जब शब्द द्वारा हमने वास्तविकता का पता चला लिया तो फिर ऋषि लोग चेते, कि अब इसमें घुस पड़ना चाहिये । जब इसमें घुस पड़े और इस लड़ी के हिस्से को पकड़ लिया तो पहला पाठ जो आप को मालूम हुआ है वह 'एकोऽहं बहुस्यामः' का जज़्बा (आवेग) था । किन्तु यह उस असल चीज़ की दुनियादारी थी यानी नीचा ख़्याल । अब ख़्याल ने आगे और फेंका । ऊपर की लड़ी हाथ में आई । पता चला कि यह तो वह गूंज है कि जो धारों की हरकत (गति) से पैदा हुई थी । इसके आगे कुछ और भी है । अन्वेषण और खोज अभी क़ायम रहीं । इस 'एकोऽहं बहुस्यामः' के ख़्याल से ऊपर पहुँचे । गोया इस प्रकार की दुनियादारी अब छूटी । दूसरे अर्थों में इस असल चीज़ की जो भद्दी शक्ल दृष्टि में थी वह निगाह से ओझल होकर उसके आगे हमारी Jump (कुदान) आरम्भ हो गई । फिर क्या था, दुई का ख़्याल भी ऐसा जिसमें शुब्हा (अनुमान) था कि यह चीज़ कहाँ तक हो सकती है, मौजज़न (उत्पन्न) हुआ । ख़ुद को तौला और उस तरफ़ निगाह जमाई । तौलते-तौलते यह पता चला कि केवल यह इन्सानी ख़वास (मानवीय वैशिष्टय) था कि हम अपने आप को तौलने लगे । जब यह चीज़ समझ में आ गई तो फिर वह असल चीज़ जो हम में पेवस्त (भिदी हुई) है उसी में तबियत और ख़्याल चिपट पड़ा । गोया अब इस लड़ी में विचार तैरने लगा । बढ़ते चले गये । अन्दाज़ लगा कि यह सब क्रीम (Cream) जो मथने का परिणाम थी, असल नहीं है । अब क़दम बढ़ता ही गया । दरमियानी हिस्से तक यह पहुँच है जो ऊपर बयान की गई । इससे आगे बढ़े तो आनन्द के स्फुरण का अनुभव

होने लगा । अब यह प्रश्न पैदा होता है कि यह अनुभव कैसे हुआ जब कि हमारा ख़्याल उसमें चिपट चुका था । बस जवाब यही है कि वह क्रीम उन्हीं तत्वों की ठोस अवस्था थी, जिसको हम ख़्याल में पकड़े हुये हैं । आनन्द तो आया और हमारा ठहराव भी हुआ और एहसास (अनुभव) भी । समझ लिया बस यही चीज़ है जिस की खोज थी । कुछ लोग यहाँ पर रह गये । शेष इस सच्चिदानन्द की हालत से भी आगे गये, और चलते-चलते रंग ऐसा सवार हुआ कि Non Duality (अद्वैत) के चक्कर में आ गये । यहाँ से आगे मुमकिन है वेद ख़ामोश हों, इसलिये कि अनिर्वचनीय कहते हुये 'नेति', 'नेति' कह दिया है ।

अब वही सवाल साइंस का आ जाता है । इस का जवाब, ख़्याल तो यह है कि कुछ न कुछ हो ही गया है । किन्तु और सही । तो फिर यह कहना चाहिये कि हम रास्ते पर हैं और अपने आप को हमने ऐसा बना लिया है कि असल में हमारा तादात्म्य हो गया है । तब तो फिर यही कहना चाहिये कि असल ही असल हमारे ख़्याल में नहीं, बल्कि हम ख़ुद ऐसे ही बन गये हैं कि सही इल्म (वास्तविक ज्ञान) के मस्कन (घर) नहीं, बल्कि स्वयं इल्म (ज्ञान) बन गये हैं । अब आप जाँच कर लीजिये कि यह Scientific (वैज्ञानिक) है या नहीं । भाई इससे ज़्यादा लिखने की मुझे ताब नहीं मालूम होती । अब अगर कुल वेद मैं पढ़ डालूँ तो फिर मैं वह आवाज़ जो मन्त्रों में क़लम बन्द की (लिखी) गई है, उसके बारे में सम्भव है कुछ लिख सकूँ ।

यह कथन कि वेद Mathematical Symbols (गणित के प्रतीकों) से भी ज्यादा सही हैं, वहीं पर ठीक होगा जब कि हम उसमें अपने को घुला मिला देते हैं, और वही चीज़ सामने आती है जो सही है । और जितने भी लोग चलेंगे वही चीज़ उन के सामने आवेगी । अब आप का विचार यह हो सकता है कि इसमें शायराना नुकात (काव्यात्मक बारीकियाँ) मौजूद हैं जिसमें Exaggeration (अतिशयोक्तियाँ) भी हो सकती हैं । तो भाई असल चीज़ को बताने के लिये उस का माहौल (Surroundings) बाँध देने से ख़्याल को Pick up (ग्रहण) करने में अधिक सहायता मिलती है । मुझे भी बहुधा इस से काम लेना पड़ता है । उदाहरण के लिये एक शेर लिखता हूँ:-

> ''नातवाँ क़ैस, नाज़नीं लैला,
> कौन पर्दा उठाये महिमल का''

प्रेमी (मजनूँ) दुर्बल है, और प्रेयसी (लैला) सुकुमारी है; फिर महमिल (ऊँट पर प्रेयसी लैला के बैठने का स्थान) का पर्दा कौन उठाये ।)

अब इसके अर्थ पर यदि आप ग़ौर करें तो फिर वह बात सिद्ध होती है कि प्रेमी (क़ैस) और प्रेयसी (लैला) दोनों Inactive (निष्क्रीय) हैं जो एक असल हालत है । गोया वह Condition जो वाक़ई है इस तरह से व्यक्त की गई है ।

(एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

प्रशिक्षक का उत्तरदायित्व

आप सब ईश्वर की कृपा से सकुशल पहुँच गये होंगे । जब कोई सफ़र करता है तो उसके सम्बंधियों को यह चिन्ता रहती है कि ख़ैरियत से पहुँचें । ख़ैरियत से पहुँचने का अर्थ सब समझते हैं, और मैं भी वैसे ही समझता हूँ, कि बिना किसी बीमारी या चोट-चपेट के मुसाफ़िर अपने निवास स्थान पर पहुँच जाये । अगर कोई रास्ते में मामूली बीमार भी हो जाता है तो कुछ दवा और एहतियात से अपने घर पहुँच जाता है । और जब कोई ज़्यादा बीमार हो जाता है तो उसे रास्ते में ही उतरना पड़ता है, इलाज के लिये, और जब तक वह ठीक नहीं हो जाता, सफ़र शुरु नहीं करता । बल्कि सरकारी क़ायदा तो यह है कि अगर कोई रेल में सख़्त बीमार हो जाये तो वह ट्रेन से उतार लिया जाता है, और अस्पताल में उस का दाख़िला होता है । वह इसलिये भी उतार लिया जाता है कि वह अपनी बीमारी दूसरे मुसाफ़िरों पर न फैलावे, अर्थात् उसकी बीमारी अन्य यात्रियों पर असर न करे ।

यह दुनियावी सफ़र का मामला है और जो लोग आध्यात्मिक यात्रा करते हैं उन का हाल भी यही होता है कि जब बीमारी सख़्त होती है तो वह भी रास्ते में उतार दिये जाते हैं । अगर शुरु का अभ्यासी है, जैसे कि कोई यात्री शाहजहानपुर से देहली जा रहा हो और तिलहर में उसकी तबियत ख़राब हो जाये, तो उसे यह ढाढ़स भी रहता है कि घर के लोग उसके क़रीब हैं, और यदि कहीं किसी दूर के स्टेशन पर बीमार पड़ा तो रोगी को घर की समीपता का ढाढ़स भी नहीं रहता । क़रीब में या शुरु में बीमार हो जाना यूँ अच्छा है कि उसके घर के लोग उसके निकट हैं । और यह चीज़ उसको तसल्ली देने वाली होती है । और जब दूर-दराज़ जाकर बीमार होता है तब उस के तीमारदार बहुत दूर पड़ जाते हैं । छूत की बीमारी का परिणाम यह होता है कि दूसरे लोग भी उसके प्रभाव के अन्तर्गत आ जाते हैं, और जब बीमारी मरीज़ की सख़्त होती है तब दूसरों में भी यह बीमारी फैला देता है । इसी तरह यदि आध्यात्मिकता सिखाने वाले में कोई छूत की बीमारी मौजूद है तो वही बीमारी उस के साथ बैठने वालों को भी हिस्से में मिलेगी,

और लाभ के स्थान पर दूसरों का नुक़सान होगा, बजाये अमृत पिलाने के वह ज़हर पिलायेगा और फिर उसके साथ बैठने वाले स्वयं छूत फैलाने वाले (contageous) बनेंगे और उन से दूसरों को भी हिस्सा पहुँचेगा । इस का उत्तरदायित्व केवल सिखाने वाले पर होगा कि उसने ऐसे रोगाणु (Germs) अपने में विकसित क्यों कर लिये जो दूसरों में असर करें ।

यह तो आन्तरिक सतसंग का प्रभाव रहा कि उसने अपने समेत सब में रोग फैला दिया । अब बाह्य रूप से यह प्रभाव होगा कि लोग कह सकते हैं कि "वाह वाह, क्या अच्छी ट्रेनिंग सिखाने वाले महोदय ने पाई है ।" परिणाम यह होगा कि वह अपने शिक्षक को भी बदनाम करेगा और स्पष्ट शब्दों में लोग यह कह सकेंगे कि "अमुक संस्था की शिक्षा का अनुमान उस संस्था के ट्रेनिंग देने वाले से लग गया" । नतीजा क्या हुआ कि संस्था और उसके अधिष्ठाता शिक्षक, दोनों को उसने बदनाम किया और लोगों में रुचि बढ़ने के स्थान पर संस्था से नफ़रत पैदा होना शुरु हो गई ।

इन सब चीज़ों के पैदा होने की वजह क्या हो सकती है ? व्यक्तिगत बातों के अलावा एक बात यह मालूम होती है कि जब बिना मेहनत किये ऊँची आध्यात्मिक अवस्थाएँ मिलती हैं, तो उनकी क़दर नहीं होती । अगर पित्ता मारने और नफ़्सकुशी (वासनाओं के दमन) से यह बात पैदा होती है तो लोगों को उसका क़लक़ होता है । यही कारण है कि बुज़ुर्ग लोग इतनी जल्दी नहीं दे दिया करते थे । ऐसे ही लोग ईश्वरीय कृपा का दरवाज़ा दूसरों के लिये बन्द करा देते हैं । यदि हम में कोई ऐब है तो बजाय उसके दूर करने, अगर हम उसमें घुटा करें तो यह उस से भी ज़्यादा ख़राब चीज़ है, क्योंकि ऐसा करने से उसकी तह और भी ठोस और मज़बूत हो जाती है । और यह ऐब वहाँ पर ज़्यादा सम्भव होता है जहाँ पर आत्म-समर्पण (Self Surrender) की कमी होती है ।

ट्रेनिंग देने वाले (Preceptor) को हर दोष से मुक्त रहना चाहिये, और उससे सीखने वालों को भी होशियार रहना चाहिये कि यदि दोष न सही तो कम से कम बीमारी ही न दाख़िल हो जाये । हमारे यहाँ बीमारी दाख़िल होने की सम्भावना इसलिये नहीं है कि हम अभ्यासी का दृष्टि-बिन्दु आध्यात्मिकता पर जमाते हैं, और उस को यह आश्वस्त करते हैं कि जब वह ध्यान शुरु करता है, कृपा और आध्यात्मिकता की धार आ रही है, तो इससे उसका बचाव (Safe Guard) हर बीमारी या दोष से रहता है । पूर्ण लय अवस्था में यह ऐब पैदा हो सकता है कि कुछ बीमारियाँ भी उसमें दाख़िल

हो जायें किन्तु फिर भी उस हद तक दाख़िल होने की सम्भावना बहुत कम है क्योंकि योग्य सद्गुरु उसका बचाव कर देता है । फिर भी किसी रूप में कोई मामूली सी बात पहुँच भी जावे तो मैं तो उस को सद्गुरु से सम्बद्ध समझता हूँ और अगर धोखे से भी मुझे उस प्रकार की तकलीफ़ महसूस हुई जो मेरे गुरु में थी तो मैं ख़ुशी में उछल पड़ता था, कि यह सम्बन्ध की शुरुआत है, किन्तु यह चीज़ केवल मेरे ही लिये थी ।

(एक प्रशिक्षक को लिखे गये पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

अहंता क्षय का उपाय

मुझे बड़ी खुशी हुई, यह जान कर कि आप ने Special training लेने के लिये हिम्मत की और मैं ऐसा ज़रूर करूँगा। ईश्वर मेरी मदद करे और आप भी हाल अपना देते रहें। मगर इस के शुरु करने के पहले वह चीज़ें जो मैंने बताईं थीं साफ़ हो जाना ज़रूरी हैं, जो बहुत कुछ साफ़ हो चुकी हैं, मगर फिर भी बाक़ी हैं। वहाँ पर मैंने Special training की शुरुआत की थी। साफ़ करते करते उस हालत पर अपने आप को पहुँचने दीजिये, फिर वह हालत ख़ुद बख़ुद शुरू हो जायेगी। अभी उसका रास्ता बन्द है । मगर भाई अब ऐसा न करना और इस तरह हमारे कमज़ोर जिस्म पर तरस खाना । उम्मीद भी यही है कि आप बढ़ेंगे ही।

आप तो सफ़ाई की मेहनत करते रहे होंगे। भाई, चाहता तो यही हूँ कि आप लोग मेरी ज़िन्दगी को कामयाब बनायें। मगर यह तभी हो सकता है जब आप लोग शानदार बनें। शानदारी से मेरा मतलब है कि आप लोग चमकें। फ़क़ीरी की शानदारी तो कपड़ों से नहीं होती, बल्कि दिल की बेरंगी से होती है। बेरंगी कैसे पैदा होती है। जब सब रंग मिल जाते हैं। पता इस का कैसे चलता है, जब साम्य अवस्था पैदा हो जाती है। साम्य अवस्था कैसे होती है, जब इन्तहाई नम्रता पैदा हो जाती है। इन्तहाई नम्रता कैसे पैदा हो जाती है, समर्पण (Submission) से। समर्पण (Submission) कैसे पैदा होता है। अपने आप को मिटा देने से। अपने आप को मिटा देने से जो चीज़ पैदा होती है वही आला दर्जे का समर्पण (Submission) कहते हैं। मगर इस की शुरुआत यूँ की जाती है कि ईश्वर को या जो Ideal हो, बड़ा समझा जाता है (यह Elementary चीज़ लिख रहा हूँ)। फिर उस पर अपने आपको छोड़ देते हैं, इस तरह पर जैसे मुर्दा गुस्ल देने वाले के हाथ में होता है। जिधर चाहे वह हाथ पैर उठाये, वह उसको Resist नहीं कर सकता। अगर कोई अहंकार टूटने का मुझसे नुस्ख़ा माँगे तो उसके लिये यही नोशदारू है और उसके यह जुज़। और कोई तरकीब उससे बेहतर मेरी समझ में नहीं आती। हमहमी उसी वक़्त मिटती है जब किसी की बड़ाई

हम अपने दिल में रख लेते हैं । उसमें एक भेद भी है और मसल भी है कि ऊँट जब पहाड़ के नीचे जाता है तो अपनी छुटाई का पता चलता है । भेद क्या है ? बहुत छोटा सा, जिसकी तरफ़ निगाह नहीं जाती । वह यह है कि हमारी तबियत दूसरे से मुक़ाबला (Comparison) करने लगती है और फिर इस लिहाज़ से अपने आप को छोटा समझते हैं । गोया पहली ठेस हम अहंकार के ऊपर दे देते हैं । अगर Comparison का ख़्याल दिल से उठा दिया जाये तो उन्नति का भी ख़्याल दिल से उठने लगेगा । Comparison हमको यह बता देता है कि हम को कैसा बनना चाहिये । जब बनने का ख़्याल पैदा होता है तो उसकी तरकीबें भी ख़्याल में आने लगती हैं । और जब तरकीबें ख़्याल में आने लगती हैं तो उसके हासिल करने की हम कोशिश भी करते हैं और जब हम कोशिश करना शुरु करते हैं वैसा बनने की, तो गोया कि हम अपने Ideal से कुछ न कुछ attach हो जाते हैं, तो हमारा ख़्याल भी उस तरफ़ रहने लगता है । और रहते-रहते यही Constant remembrance की शक्ल पैदा कर देती है और जब हम में Constant remembrance पैदा हो जाती है तो उसकी गर्मी और बिजली हमारी ख़बर मालिक तक पहुँचा देती है । मालिक तक ख़बर पहुँच गई तो यह मुमकिन ही नहीं कि उसकी Current आप के Set-up Pole पर न पहुँचे । तो भाई यह सब फ़ायदे की बातें बता दीं जो मेरी इस वक़्त समझ में आयीं । अब करना आप लोगों के हाथ में है और मदद ईश्वर की । तरीक़ा अपनी ख़बर देने का यही है और वैसे भाई चिल्लाये जाओ "सदा (आवाज़) तूती की सुनता कौन है नक़्क़ारख़ाने में ।" ईश्वर के कान तो हैं नहीं जो उनकी सुन ले और न आँखें हैं जो देख ले । उसके पास जो चीज़ है वही इन सब चीज़ों के लिये Instrumental है और होता भाई अन्त हमारा भी ऐसा ही है कि हम भी अपने कान फोड़ लेते हैं और आँखें भी, ताकि हम उसी तरह के हो जावें ।(इस से यह मतलब नहीं कि कोई किसी Instrument से अपने आँख-कान फोड़ ले) इसका मतलब आप समझ गये होंगे कि हमें वैसा ही बनना चाहिये ।

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

गुरु की शक्ल का ध्यान

आप का पत्र पढ़ा। कुछ हर्ज नहीं अगर स्वामी जी की याद आ जाती है। अच्छे आदमियों की याद आ ही जाना चाहिये। रह गया मैं; मुझे तो आप अपना सेवक समझिये, जो घर का कूड़ा करकट झाड़ पोंछ कर बाहर निकाल देता है। स्वामी जी को मालिक समझो और मुझ को सेवक। मुझे आप की सेवकाई में बिल्कुल आर (झिझक) नहीं और चाहता यह हूँ कि इस सेवकाई का मूल्य आप उन्हीं को अदा करते रहें। इससे मुझे ख़ुशी होगी और मेरी सेवकाई नेचर (Nature) की किताब में निष्काम लिखी जायेगी। मगर एक बात मैं ज़रूर लिखूँगा, कि हर हैसियत में आप अपने आध्यात्मिक लाभ का विचार ज़रूर रखियेगा।

सीधी सीधी बात लिख दी। बात क्या, मेरी ख़ुद की हालत का तर्जुमा कहिये। सेवक को सेवकाई से मतलब, और मालिक को मिलकियत से। मतलब यह कि जहाँ मिलकियत होगी, मालिक ज़रूर होगा और जहाँ सेवकाई होगी, वहाँ मिलकियत नदारद। अब एक बात और है। जहाँ सेवकाई है और सेवा का ख़्याल; असलियत वहाँ भी नहीं मिलेगी। तब असलियत कहाँ रही! सिर्फ़ वहाँ कि सेवा करते हुये सेवा का संस्कार (Impression) न जमे।

मगर भाई, क्या ऐसा आदमी आप ने कोई देखा है? मैं समझता हूँ, देखा होगा। अब किस लिबास में। यानी साधुता के चड़क भड़क के लिबास में देखा होगा, या गृहस्थ की पोशाक में। इस का तसफ़िया (निर्णय) आप ख़ुद करें। या अगर आप मुझ से पूछें, तो मैं अपने छुटपन का नातजुर्बेकारी का ख़्याल ज़ाहिर करता हूँ। वह यह कि जब तक मेरी तबीयत में रंगीनी रही (रंगीनी से मतलब कोई ख़राब अर्थ में नहीं है) रंगीन ही कपड़े में तलाश करना चाहा और हमेशा नाकामयाब रहा। आख़िर फिर ईश्वर पर छोड़ दिया, और दुआ यह करता रहा कि बिना तलाश किये हुये मुझे कोई मिल जाये, ऐसा कि जो ख़ुद अपनी मिसाल हो। आख़िर को ईश्वर ने ऐसा ही किया। मुमकिन है कि उस वक़्त तक रंगीनी का लिहाज़ दिल से जा चुका हो।

हमने सादगी भी देखी और शान्ति भी; और यह अक्सर लोगों में ! मगर उन में से ज़्यादातर ऐसे मिले जिन में सन्तभाव (Saint-hood) का कुछ पता न मिला । मगर मेरी तबीयत ऐसे लोगों पर कभी नहीं गिरी और गिरी तो ऐसे पर कि जिसने मुझ नाकारा को सेंक सेंक कर ऐसा बना दिया, कि ऐसे बुज़ुर्ग की बड़ाई या तारीफ़ कर सकूँ-इसके लिये मेरे पास ज़बान नहीं । तो भाई मैं समझता हूँ कि मुमकिन है कि आपको आप के ख़्याल के मुताबिक़ ऐसा आदमी न मिला हो । इसलिये कि अगर मिल गया होता, तो फिर आप की तबीयत दूसरे को तलाश न करती !

आदमी ज़रूर मिल जाता है, ऐसा कि जिस से अपना काम बन जावे । और ऐसा भी होता है कि मिल जाता है, फिर भी हम उससे काम नहीं लेते । वजह उसकी यह होती है कि हम तलाश ज़रूर करते हैं, मगर अपने को ऐसा योग्य (Deserving) नहीं बनाते । अब अधिकारी (Deserving) कैसे समझा जाये ? इसके लिये हमें लिखने की ज़रूरत नहीं, आप जानते ही हैं, बल्कि हर शख़्स जानता है, अपनी अक़्ल के मुताबिक़ ।

पहले तो यह जानना चाहिये कि अगर इन्सान का ध्यान किया जाये, तो वह किस गति का होना चाहिये । इस क़ाबिल वही आदमी हो सकता है, जिस ने पूरे तौर से ब्रह्म में लय अवस्था प्राप्त कर ली हो और मालिक व बन्दे का अन्तर सिर्फ़ कहने मात्र को ही रह गया हो । इस से कमतर दर्जे का इन्सान इस क़ाबिल नहीं होता कि उस का ध्यान किया जा सके । अगर हम, किसी की सिर्फ़ सादगी देखकर उस का ध्यान शुरु करते हैं, तो मेरी समझ से नूरजहाँ इस के लिये फ़िट मिलेगी । एक दफ़ा जहाँगीर ने दो कबूतर नूरजहाँ के हाथ में दिये । इत्तफ़ाक़ से एक कबूतर उस के हाथ से छूट कर उड़ गया । जहाँगीर ने पूछा कि कबूतर कैसे उड़ गया । उसने दूसरा कबूतर भी छोड़ दिया कि ऐसे उड़ गया । इस सादगी और मासूमियत (Innocence) की मिसाल कमतर मिलेगी ।

ध्यान करना ऐसे आदमी का (जिसकी ब्रह्म में पूर्ण लय अवस्था हो) अमृत समझिये । और अगर ऐसा आदमी ने मिले, तो जिस हालत का भी मिल जाये, ध्यान करने से आप उसी हालत तक पहुँच सकेंगे । और कहीं नूरजहाँ जैसे आदमी पर तबीयत गिर पड़ी और उसकी सादगी पर हम अपना दिल दे बैठे, तो भाई उसी क़िस्म की चीजें विकसित (Develop) होंगी । अब जहाँगीर का ज़माना भी नहीं कि वह सादगी जहाँगीर ऐसे आदमी तक पहुँचा दे । अगर इत्तफ़ाक़ से हमारी तबीयत किसी शान्त प्रकृति पर गिर पड़ी और

वह ऐसा हुआ कि मल, विक्षेप और आवरण से अलहदा न हो, तो उस का ख़्याल करने से हम में भी वहीं बातें पैदा हो जायेंगी और वही विष हम में फैल जायेगा ।

इसलिये सब से अच्छा यह है कि ईश्वर से बराह-रास्त (Directly) मुहब्बत पैदा करने की कोशिश करें, और कोई यदि रोशनी देने वाला मिल जाये, तो उस से मदद लें, और अपनी ही मौजों (लहरों) में ग़ोता मार कर तमाशा देखें ।

मैंने यह ख़त लिखा कि आप इसको पढ़ें, और सोचें । मेरा यह मतलब नहीं कि आप सूखी हुई हड्डियों का ध्यान करने लगें । उसके लिये तो कोई सूखा हुआ आदमी ही फ़िट हो सकता है, जिस ने बहुत कुछ अपना चरित्र (Character) मेरी तरह गिरा दिया हो ।

(एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

हृदय का विस्तार

''हृदय'' एक ऐसी चीज़ है जैसे किसी तालाब में कोई चीज़ दबी पड़ी हो, जिसका पता न हो, किन्तु हो ज़रूर ! माँस का लोथड़ा वास्तव में आध्यात्मिक दृष्टि से ''हृदय'' नहीं कहा जा सकता । हाँ, यह तालाब ज़रूर है, जिस में दिल गुम है, इसकी खोज उसी समय होती है, जब उस गुम, खोई हुई, चीज़ में बढ़ाव प्रारम्भ हो जाता है । यह चीज़ उस माँस के लोथडे की सीमा और बंधन से आज़ाद है, किन्तु ठिकाना उसी में है । रुहानी मन्ज़िल में वास्तव में यही बीज है जो अन्ततोगत्वा पेड़ बना है, और उसी के फल से तृप्ति होती है । उसकी आँख हर दिशा में फैल जाती है, यहाँ तक कि प्रत्येक चक्र को ढक लेती है और अपना असर उसमें क़ायम कर देती है । यह वह चीज़ है कि यदि यह कहा जाये कि प्रकृति ने उसे अपने आप बनाया है, तो ठीक होगा । यह वह चीज़ है जो प्रकृति के गर्भ में पली है । इसके शुद्ध रूप में वही शक्ति का आधार कह सकते हैं । यह वह दाना है कि जब अस्तित्व की खेती जल जाती है तो यह उगता है । इस की प्रशंसा कहाँ तक की जावे । यह चीज़ बढ़ते-बढ़ते समस्त ब्रह्माण्ड (Cosmos) में पहुँच जाती है । और उसमें ऐसी लय हो जाती है कि अपने अस्तित्व को पूर्ण रूपेण नष्ट किये बिना ही यहाँ तक बढ़ती है कि अन्तिम सीमा पर पहुँचा देती है । यह वह सीढ़ी है कि जिस पर हम चढ़ते चले जाते हैं और अन्त में जहाँ तक अभ्यासी की पहुँच सम्भव है, पहुँच जाते हैं ।

मैंने पुस्तकों में हृदय-क्षेत्र (Heart Region) और फिर चित्त क्षेत्र (Mind Region) और उसके बाद केन्द्रीय क्षेत्र (Central Region) लिखा है । केन्द्रीय-क्षेत्र का पूरा नक़्शा हृदय में उतरा हुआ है । यहाँ तक कि मुझ को तीन दिन सोचने के बाद यह पता चला है कि जितने दायरे केन्द्रीय-क्षेत्र में हैं, वही दायरे इस बीज में थोड़ा खुलने पर महसूस होते हैं । और यहीं पर (इसी श्रेत्र) की तालीम से केन्द्रीय क्षेत्र के बहुत से दायरे पार हो सकते हैं और अन्त में हम उस अन्तिम किरण तक पहुँच सकते हैं । दायरे केवल सात हैं । अब मैं इस प्रकार की तालीम अगर देना प्रारम्भ करूँ, तो अफ़सोस

है कि लोग मुझ से भागने लगेंगे, और महीनों तवज्जह की ज़रूरत न होगी, यानी अगर मैं यह काम प्रारम्भ से ही ले लूं । बहुत ज़्यादा तरक्की करने के बाद इस तालीम को लिया जा सकता है । मैंने केवल एक अपने गुरु भाई को, जिन्होंने आधी यात्रा पूरी कर ली है, इस प्रकार की तालीम देना शुरु किया है ।

यह वाक्य मैं अधिक लिख गया । मतलब पर आता हूँ । यह दिल की बढ़वार, जैसा कि ऊपर लिखा है कि अखिल ब्रह्माण्ड (Cosmos) में पहुँच कर लय हो जाती है । इसका अर्थ यह है कि वह अपने ज़र्रात (कणों) को खो बैठती है । किन्तु दायरे (Rings) शेष रह जाते हैं । यदि उन दायरों को कोई व्यक्ति तोड़कर प्रसार (Expanse) में ले आवे तो असीम शक्ति अभ्यासी में आ जाती है किन्तु यह Ring हर एक की तोड़ी नहीं जाती है बल्कि उस की तोड़ी जाती हैं जिससे प्रकृति अपना ख़ास काम लेना चाहती है, और यह बिना उसकी इच्छा के नहीं टूटती । यहाँ पर से उससे सूक्ष्म शक्ति शुरु हो जाती है । और वह ''Rings'' जो इस जगह पर रगड़ खा कर शक्ति पैदा करती है, वह चीज़ और आगे जाती है । और इसी प्रकार वह गई हुई चीज़ जब उस स्थान से रगड़ खाती है तो उससे आगे जाती है, यहाँ तक कि अन्त में कुछ ऐसा कहने मात्र को मूल तत्व (Essence) रह जाता है जिसको Essence कहना उस चीज़ को कई गुना भारी बना देगा । इस अन्तिम Essence का रुझान जिस समय केन्द्रीय क्षेत्र (Central Region) में होता है, और वह उसके हुकुम से वहां पहुँच भी जाता है, तो वह जिसको कि मैं ने मूल तत्व (Essence) कहा है, अपना अस्तित्व भी खो देता है, और थोड़ा आगे बढ़ने पर और तैराकी करने से क्या हो जाता है । बस यह कि ईश्वर जिस को यह हालत नसीब करे, वही समझ सकता है । अब न क़लम में शक्ति है न ज़बान में कि कुछ लिख सके या कह सके । अब आप स्वयं ही फ़ैसला कर लीजिये कि हृदय का विस्तार कहाँ तक है, और किस तरह से, और यह भी अन्दाज़ा लगा लीजिये कि आप के दिल का बढ़ाव कितना हुआ है ।

(एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

समुद्र खो बैठे

आध्यात्मिकता के क्षेत्र में चरित्र निर्माण का एक विशेष स्थान है तथा इस का महत्व अध्यात्म से किसी प्रकार कम नहीं । परम पूज्य लाला जी महाराज रुहानियत में अख़लाक़ पर विशेष बल देते थे । एक जगह उन्होंने लिखा है 'एक बात मैं हर शख़्स से कहता हूँ कि अपनी अख़लाक़ी हालत सम्हालने की हर जिज्ञासु प्रारम्भ से ही कोशिश करे । कोई बात मुँह से ऐसी न निकले जो दूसरों को नागवार हो और न ही कोई ऐसी हरकत करे जो दूसरों को नापसंद हो । मैं रुहानियत का इस क़दर प्रशंसक अथवा प्रेमी (दिलदादा) नहीं, जितना की अख़लाक़ (चरित्र) का । कोई व्यक्ति अगर ध्रुव पद तक अपनी पहुँच (रसाई) कर ले, मगर अख़लाक़ी कमज़ोरियाँ बाक़ी रहें तो मैं समझता हूँ कि अब तक उसे वास्तविक तत्व (असल जौहर) प्राप्त नहीं हुआ ''।

मैं भी हृदय से यही चाहता हूँ कि मिशन के अभ्यासियों में अख़लाक़ की कोई कमी न रहे, मगर मेरे चाहने से क्या होता है । लोगों में अपनत्व की भावना की कमी है । लोग स्वयं कुछ करना नहीं चाहते । मुझ से अपेक्षा करते हैं कि मैं ही अपनी आन्तरिक शक्ति द्वारा उनके उत्थान के लिये सब कुछ करूँ । उनको सत्संग के लिये प्रेरणा भी दूँ, उनको दैनिक अभ्यास भी कराऊँ, उनको तरक़्क़ी भी कराऊँ और इस सब में अपनी इच्छा शक्ति से उन्हें प्रेरित करूँ । उन्हें कुछ न करना पड़े । वे स्वयं न अपने जीवन के तौर तरीक़ों को बदलना चाहते हैं और न ही अभ्यास, आदि, जो उन्हें बताया जाये, वह करना चाहते हैं । और फिर भी जो कोई उनमें कमी रह जाये या उनकी आध्यात्मिक उन्नति में शिथिलता हो, तो उस के लिये भी मेरी ज़िम्मेदारी और दोष । मेरी एक परेशानी और भी है । लोगों के सहयोग के बिना भी मेरी सहानुभूति उनसे रहती है और मैं उनकी सहायता हेतु सदा तत्पर रहता हूँ । इसी लिये मैं ऐसे लोगों की प्रार्थना पर उनके लिये सब कुछ करने को तैयार हो जाता हूँ चाहे वे केवल औपचारिक रूप से इसमें दिलचस्पी रखते हैं । मैं अपनी तबियत को क्या करूँ कि मैं सारी की सारी रुहानियत सब

में उंडेलाना चाहता हूँ चाहे वे उसे ग्रहण करने को तैयार हों या न हों । जब मैं यह देखता हूँ कि मुझे अभी कितना सिखाना है तो मेरे होश उड़ते हैं और चाहता यह हूँ कि घोल कर पिला दूँ । मगर घोल कर पीने वाले भी एक दो ही मिलेंगे । यह मेरा भाग्य है । मैं चाहता तो यह हूँ कि सब लोगों का काम बन जाये । मेहनत किसी की व्यर्थ नहीं जाती परन्तु मेहनत करना ही व्यक्ति के लिये मुश्किल मालूम होता है । सब कुछ कहो, मगर उन्हें होश नहीं आता । कुछ ऐसे भी हैं जो उम्मीद लगाये बैठे हैं कि मैं एक दम से उन्हें दे दूँगा । लाखों जन्म गुज़र गये अब तक अपने वतन को वापसी नहीं हुई और दुःख यह कि अब भी उसका ख़्याल पैदा नहीं होता । मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ जब कोई चलना ही नहीं चाहता ।

मेरा दिल अपने साथियों के लिये गहरे प्यार से भरा हुआ है । उनके लिये मैं जो भी सेवा करूँ उससे मेरा दिल नहीं भरता । मेरा हृदय सदा व्याकुल रहता है कि अधिकांश लोग शीघ्र से शीघ्र, कम से कम मेरी हालत पर पहुँच जायें । इस कार्य में जल्दी करने के लिये और इस विचार से कि आप लोगों में इसका संदेश शीघ्र व अधिकाधिक पहुँचे, मैंने इतने अधिक प्रिसेप्टर बनाये ताकि वे पब्लिक में जागृति उत्पन्न कर सकें और अधिक से अधिक लोगों का काम बन जाये, उन का अख़लाक़ व व्यवहार सुधरता चला जाये ।

भारत वर्ष में यह चीज़ पहले, जहाँ तक गुप्त रक्खी जा सकती थी, रक्खी गई । नतीजा यह हुआ कि पुराने ज़माने में ऋषि लोग केवल अपने कुछ शिष्यों को बता गये । फिर समय बदला और ज़माने का असर पड़ने लगा । उसमें से कुछ लोग ऐसे भी थे जो बता भी न सके । धीरे-धीरे यह चीज़ लगभग समाप्त हो गई । असलियत छिप गई मगर असलियत की ऐंठ पैदा हो गई । बड़ाई और छुटाई का विचार पैदा होने लगा और तिल भर चीज़ मिलने पर ही गद गद हो गये, उसी को सब कुछ समझ बैठे । क़तरा भी दरिया में छिप गया । देखने वालों को भी मालूम पड़ा कि बस यही सब कुछ है । दरिया देख लिया और उस पर ऐसे लट्टू हो गये कि समुद्र का विचार तक बाक़ी न रहा । इस प्रकार अपने को Limited कर दिया । जब Limited कर दिया तो इसके Grosser aspects सामने आने लगे । शरीर का विचार और विचार का विचार, बहुत ज़बर्दस्त पैदा हो गया ।

अब हुआ यह कि एक बन्धन अहंकार (Egoism) का और लग गया । अपने आप को इतना समझने लगे जो वाक़ई में उन में है नहीं । लगभग यही विचार हमारे कुछ प्रिसेप्टरों में पैदा होने लगा । और यह बीमारी कम

होने के बजाये बढ़ रही है । उनको Power का देना हमारे लिये वबाले जान हो गया । Power थी तो ईश्वर प्राप्ति के लिये और दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिये, पर उन के लिये यह अहम का दुर्विचार पैदा करने वाली बनने लगी । दूसरों को प्रशिक्षण के अतिरिक्त अपना स्वयं का अभ्यास ही तर्क कर बैठे । वे यह भूल ही गये कि प्रिसेप्टर होने के साथ-साथ वे अभ्यासी भी हैं । प्रिसेप्टर पूजा आदि की निर्धारित विधि को अपने स्वयं के विचार में तोड़ मरोड़ कर अभ्यासियों को बताने लगे । कोई प्रिसेप्टर कुछ बताते हैं तो अन्य कुछ और । उनकी समझ में यह नहीं आता कि सूक्ष्मतर को पाने के लिये अति सूक्ष्म निर्धारित अभ्यास की विधि में थोड़े से परिवर्तन किये जाने के दुष्परिणाम भी हो सकते हैं । क्या कोई कह सकता है कि उसने कुल Infinity को पी लिया है । यदि असलियत की एक grain भी मिल जाये तो वह इतनी बड़ी चीज़ है कि कुल दुनिया की दौलत से भी उस की क़ीमत अदा नहीं हो सकती । ऐसा भी है कि उनको जो Power दी गई, उसका उपयोग वे अपने अहंकार में दफ़न होकर करना चाहते हैं । यह नहीं सोचा कि इस से मेरे लिये दो काम हो गये (एक तो उनकी आध्यात्मिक उन्नति हेतु उन्हें आगे बढ़ाना और दूसरे उनसे उन के स्वयं अर्जित अहंकार को अलहदा करना) । उन के इस ज़रा से ग़लत कार्य के कारण मेरा इस ज़ाती अवस्था में कितना कार्य बढ़ गया है, इस का सही अन्दाज़ वे नहीं लगाते । शायद सही अनुमान लगाने की स्थिति में ही वे नहीं हैं । वह अहंकार के एहसास को अपनी Power समझने लगे । गोया उस में बिंध गये । अब एक बड़ा अंदेशा यह हो सकता है कि इस दशा में कहीं लय न हो जायें, जिसको हटाना लोहे के चने हो जायेंगे । लोगों ने Power शब्द तो याद कर लिया मगर उन की समझ में यह न आया, शायद उन्होंने यह समझने की कोशिश भी नहीं की, कि Power क्या है और इसका प्रयोग दूसरों के लिये कैसे करें । एकाध ऐसे भी पैदा हो गये जो दाल को भात समझने लगे हैं और उनको इसी में आनन्द आने लगा है । ऐसे लोगों के लिये एकमात्र यही कहा जा सकता है कि वे किसी प्रकार गुमराह हो गये हैं जिन को सही रास्ते पर लाना उनकी हठधर्मी के कारण एक टेढ़ी खीर सा हो गया है । मुझे अपनी मेहनत के यह नतीजे मिल रहे हैं । ऐसे लोगों को मैं क्या कहूँ । यही कह सकता हूँ कि मेरा भाग्य ही ऐसा है ।

मिशन के जितने भी सेन्टर हैं, सब लाला जी साहब के हैं, किसी व्यक्ति विशेष के नहीं, और हम लोग बहैसियत मुलाज़िम काम कर रहे हैं ।और उन्हीं के हुकुम से काम करते हैं । यदि अब भी ऐसे लोग नहीं बदलते और

सहयोग नहीं देते तो मेरी सारी कोशिशों के बावजूद यही कहना होगा कि उन लोगों को गुरु कृपा से समुद्र मिला तो, पर वे अपनी अज्ञानता वश समुदर खो बैठे । मिशन के अभ्यासीगण और विशेष रूप से प्रिसेप्टर लोगों को तो ''मेरा मझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर,''

इस उक्ति पर अमल करना चाहिये और इसी में हम सभी का हित है ।

❑❑❑

दिल की बात

आप के दोनों पत्र मिले । पढ़ कर यह अफ़सोस हुआ कि जब आपसदारी है तो झगड़ा और बहस का सवाल ही क्या ? यदि कोई बात किसी की समझ में नहीं आती तो एक दूसरे से मदद ली जाती है, और कुछ बहस भी उसमें सही बात जनाने के लिये हो सकती है । यह तो एक मुहब्बत का सौदा है और हर व्यक्ति जो इस के क़ाबिल हो, उनको एक दूसरे से मदद लेनी चाहिये ।

क़िब्ला हज़रत लाला जी साहब हर व्यक्ति से बिरादराना बर्ताव रखते थे, और मुहब्बत आपके साथ-साथ बिखरती हुई चलती थी । बुज़ुर्ग किसी धर्म या सम्प्रदाय का हो, हम सब को लाज़िम है कि उनकी क़द्र करें । यहाँ छोटे बड़े का सवाल नहीं । हज़रत लाला जी साहब फ़र्माते थे कि हम सबको एक दूसरे से मुहब्बताना बर्ताव रखना चाहिये, और यह क़रीब क़रीब हर बड़े बुज़र्ग ने कहा है, और किया है । मुझे जो कुछ मिला है और मिल रहा है, यह सब क़िब्ला हज़रत का अतिया (दिया हुआ) है । मैं जहाँ तक सम्भव है, हज़रत क़िब्ला के क़दम-ब-क़दम चलने की कोशिश करता हूँ, और इसमें जो कुछ भी मुझे मिला है, वह उसी पवित्र हस्ती से मिला है, जिसके हम सब लोग भिखारी हैं । दरवाज़ा रुहानियत का हर शख़्स के लिये, जो वाक़ई सीखना चाहता है, खुला हुआ है । मैं ने यही कोशिश की है, और कामियाबी जो कुछ मिली है, या फ़ायदा पहुँचा है, यह सब आँहज़रत की ही बरकत है ।

के बचश्मे-दिल मबीं जुज़ दोस्त ।
हर के बीनी बदाँ कि मज़हरे-ओस्त ।।

(हृदय की आँखों से प्रियतम के अतिरिक्त मानव अन्य कुछ न देख; तू जो कुछ भी देखे उसी की ओर से जान) । मैं समझता हूँ यदि लोग इसी बात पर अमल करें, तो आपसी भेद भाव नहीं रहेगा ।

आप ने कुछ टेकनीक के बारे में मुझ से दरियाफ़्त किया है । इसमें मुझे यह कहना है कि मैंने वही किया जिसके लिये हुक्म था, और वही कहा जिसको हज़रत चाहते थे । मुझे इतनी फुरसत ही नहीं मिली कि इन बातों पर ग़ौर करता । इस के बारे में मैंने कहीं पढ़ा ज़रूर है, मगर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया । और जब काम बिना इसके बन रहा था, जैसा कि मैं समझा हुआ हूँ, तो टेकनीक जानने की ज़रूरत भी नहीं रहीं । मैं बड़ा खुश हूँगा, अगर आप इस की तशरीह लिख कर, जो बुज़ुर्ग के कलाम में आई है, मुझे भेज दें ।

एक जिज्ञासु को लिखे गये पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

प्रकृति में समरूपता

सत्ता में एक चीज़, ईश्वरीयता की मूल स्थिति, जिस में प्रत्येक वस्तु अपने सार रूप में आत्मसात् थी, सृष्टि से पूर्व अस्तित्व में आयी। अभिव्यक्ति की प्रक्रिया क्षोभ (Kshobha) से प्रारम्भ हुई, जिस के कारण ब्रह्माण्ड की अव्यक्त गति में विक्षोभ होने से मन्थन होने लगा। हलचल फिर से आरम्भ हो गयी और इस से शक्ति भी सक्रिय हुई, फलस्वरूप उस की क्रियाशीलता और अभिव्यक्ति का होना आरम्भ हो गया। इस प्रक्रिया का मार्ग यद्यपि ईश्वरीयता से पूर्ण सामंजस्य रखता है तथापि उसके बाह्य स्वरूप में थोड़ी बहुत भिन्नता लक्षित होती है क्योंकि उसने अभिव्यक्ति के उद्देश्य से अलग मार्ग ग्रहण कर लिया था। व्यक्ति के निर्माण से इस का अति निकट का सम्बंध होने की वजह से ही वह मानवता के मार्ग को अभिव्यक्त कर सका।

अब ये दोनों मार्ग सक्रिय हो जाते हैं-ईश्वरीयता और मानवता के-साथ-साथ चलते हैं, एक दूसरे के समरूप, किन्तु मूल में उस समय सृष्टि करना मुख्य उद्देश्य था, इसलिये मानवता के मार्ग ने प्रभुत्व जमाना आरम्भ कर दिया और मानव सहित प्रत्येक वस्तु मूर्तरूप ग्रहण करने लगी, जबकि उस अवस्था में वह अत्यन्त सूक्ष्म रूप में थी। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण ढाँचे का आधार मानवता का मार्ग था। लेकिन उसकी क्रियाशीलता ईश्वरीयता के मार्ग के लिये निष्क्रिय थी जो कि इस के साथ-साथ ही चल रही थी। इस प्रकार शक्ति का उचित संचालन विभिन्न आकारों और रूपों को लेकर आया। वास्तव में मानवता तब तक अच्छी तरह कार्य नहीं कर सकती जब तक वह ईश्वरीयता का सहयोग लेकर नहीं चलती। संक्षेप में, मानवता अपने आप क्रियाशील हो गई और उसके साथ ईश्वरीयता भी समरूप चलने लगी।

क्रियायें बढ़ती रहीं और मानव तथा उसके साथ प्रत्येक चीज़ ठोस से ठोसतर रूप धारण करने लगी। मानव संघटना का प्रत्येक तत्व मानवता के अन्तर्गत आता है, जिस के प्रत्येक तत्व के मूल में ईश्वरीयता विद्यमान रहती है। इसी कारण वे कहते हैं 'ईश्वर मनुष्य में है' और यही विचार

प्रायः समस्त धर्मावलम्बियों का है । अतएव हमारा अन्तिम उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है जब हम मानवता के मार्ग को ईश्वरीयता के साथ जोड़ दें चूंकि ये दोनों ही एक महान ईश्वर-परमतत्व से आऐ हैं । ईश्वरीयता की भाँति मनुष्यता भी अपनी विशुद्ध स्थिति में थी । इसमें क्रियाशीलता की शक्ति उस वक़्त भी थी, हालाँकि नाममात्र को, अथवा यह कह सकते हैं कि सुषुप्त अवस्था में । सक्रियता ने झटके पैदा किये और उसकी प्रतिक्रिया ने कंपन उत्पन्न किया जिसके कारण जाग्रत जैसी स्थिति आयी और उससे विभिन्नताएं तथा विसंगतियाँ दिखाई देनी शुरु हो गईं । उस से गर्मी और ठंडक व्यक्त हुये और विभिन्न रूपों में निर्माण के प्रवर्त्तन का कार्य शुरु हो गया । ये समस्त तत्व मानव संघटना में प्रवेश कर गये और वह सत्ता में समस्त तत्वों का पुंजीभूत पिंड बन गया । अब जो कुछ भी हमें करना है वह यह कि उनको फिर से उनकी असली हालत में ले आयें अथवा दूसरे शब्दों में उन्हें सन्तुलित और शान्त स्थिति में लौटा लायें ताकि उस का ईश्वरीयता से सम्बंध बना रहे । इस को प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता उनका आरम्भ सही तरीक़े से करना है और यही हम सहज मार्ग में करते हैं ।

प्रकृति का रहस्य यही है जिस का मैंने यहाँ उद्घाटन इसलिये किया ताकि लोगों को ''मानव का पूर्ण-ईश्वरीयता में परिणित'' होने का वास्तविक अर्थ अच्छी तरह समझ में आ जाए ।

❑❑❑

सद्गुरु का सन्देश

देहधारी को तकलीफ़ ही तकलीफ़ है । फिर भी हम देह के इस क़दर पीछे पड़े रहते हैं कि यह चीज़ आख़िर तक नहीं छूटती; बल्कि फिर पैदा होने को जी चाहता है । यह और बात है कि मालदार घर में पैदा होने का जी चाहे या किसी राजा के यहाँ । मगर भाई, जहाँ पर कि नाम आ गया, तकलीफ़ शुरु हो गई, चाहे वह कितनी ही सूक्ष्म साँचे में ढली क्यों न हो ।

किन्तु हमारी महफ़िल कुछ और है । हम (मनुष्य) वहाँ हैं, जहाँ से हम को ख़ुद हमारी भी कुछ ख़बर नहीं आती, अर्थात् वह स्थिरता हम में प्राकृतिक रूप से मौजूद है, जहाँ समासम का एक भाव कह सकते हैं । हर चीज़ की पैदाइश इस के बाद हुई है । दूसरे अर्थ में हम उस समय थे, जब कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति भी न थी । अब वहाँ पर क्या है ? बड़ाई ! नहीं !! मंज़िल, जिस पर पहुँचना है, क्या है ? छोटाई कहें छोटाई कैसी, कि हम को ख़बर न हो । और भाई यही असल चीज़ है ।

अगर हम अपने आप को बड़ा समझते हैं तो उस बड़ाई में, जिस पर हमें पहुँचना है, हम एक दीवार हायल कर देते हैं, जो सद्देराह बन जाती है । नुक़सान क्या ? जब बड़े बनते हैं, दूसरों को छोटा समझने लगते हैं । अब वह राह भी बन्द हो जाती है, जिस पर हमको चलना है । हम किधर के ही न रहे । किसी को ख़्याल पैदा होता है कि किसी ख़ास तरीक़े में हम किसी से बड़े हैं । उसकी विभिन्न सूरतें हो जाया करती हैं । ख़्वामख़्वाह हम अहंकार को पक्का कर लेते हैं और उसमें कुछ नहीं मिलता । अपने ख़्याल में मियाँ मिट्ठू बन लेते हैं, और उसमें बहुत कुछ खो बैठते हैं ।

गर्दन तानना एक ऐब है, और यह जब तक दूर नहीं होता, उस समय तक अपने तल्ले की उस को ख़बर नहीं होती । तल्ले से मेरा मतलब यह है कि जब यह ऐब इन्सान क़तई दूर कर ले, (तो इस के बाद जो हालत

आती है, उसका इस शब्द से तर्जुमा किया गया है)। इस हालत में रहना शराफ़ते इन्सानी है । यह चीज़ जब गाढ़ी जो जाती है, तो मिस्कीनी सिफ़त के दायरे में आ जाती है । जब यह हालत बन गई, तो फिर वाक़ई वह बन्दा बन्दा हो गया । ऐसी हालत बनाने के लिये सैंकड़ों तवज्जह और दुआएँ की जाती हैं । इन्सान को अपने स्तर से कभी बाहर नहीं होना चाहिये, और वह स्तर उबूदियत कहलाता है, और बन्दे के लिये यह लाज़मी शै है । यहीं पर, जैसा कि मैंने बहुधा लिखा है, अहंता से बहुत कुछ सुबुकदोशी हो जाती है । मतलब इसके बाद सिद्ध होता है । अधिक अच्छा तो यह है कि आप जो कुछ भी हैं, मय उसके आप उस तरफ़ जावें, यानी कोई चीज़ ऐसी न रहे, जिसका रुख़ उस तरफ़ न फिर जावे, यानी मय कुल लवाज़माते जिस्मानी व रुहानी-जो कुछ भी है, इस तरह से उसके सुपुर्द किया जावे कि आप में सिवाय याद के कोई चीज़ बाक़ी न रह जावे ।

अब सवाल पैदा होता है कि यह हालत कैसे पैदा हो । भाई वही चीज़, "याद" सब कुछ पैदा कर देती है । अगर याद मौजूद है, तो समझ लीजिये कि जिसकी याद है वह आपके निकट है । निकटता ज़रा याद तेज़ करके बढ़ने दीजिये, फिर देखिये क्या लुत्फ़ और सुरूर पैदा होता है । बल्कि यह चीज़ वहाँ पहुँचने के लिये किस क़दर जल्दी करती है । जब यह चीज़ इस हद तक पहुंच गई, जहाँ से शुरुआत है, यानी कहीं इसने उस मैदान, क्षेत्र या दायरे को छू लिया, समझ लीजिये कि यार के दरवाज़े की कुण्डी खटखटाने लगे । जब उस की समझ में आ गया कि वाक़ई यह मेरा मुतलाशी और मुहब्बत करने वाला है, तो यह लाज़मी शर्त हो जायेगी कि वह आपके निकट आ जावे, और उस बन्धन को तोड़ दे, जिसने मकान के अन्दर जाने से आप को रोका है । भाई कर के तो देखो, तब मालूम हो जायेगा कि यह चीज़ क्या है ।

अब यह बात हासिल होने लगी, तो आप ईश्वरी-गुणों को प्राप्त कर लेंगे । आप सिफ़्त पर पहुँचे । यूँ कहो कि धूप में आये । मालूम हो गया कि रोशनी सूरज की है । इससे पहले हमें सिर्फ़ अपनी सिफ़्तों की ख़बर थी । आप की तैराकी अब उस चीज़ में होनी लगी, जो ईश्वर के बिल्कुल बाद है, यानी ठीक उसके बाद । यहाँ तक तो आ गये, अब और आगे बढ़ने की ख़ुशख़बरी मिलती है । जब याद इस हद तक तरक़्क़ी कर जाती है कि उस याद का पता नहीं रहता, तो याद की शक्ल दूसरी हो जाती है, और यह उससे आगे बढ़ने पर पता चलता है: "जिस को जितना होश है, उतना

ही वह बेहोश है'' । इसको खोलना क़ब्ल-अज-वक़्त-होगा । इस की ख़ुशख़बरी उस हालत पर आने पर उस समय मिलेगी, जब आप वहाँ जाने के लिये ख़ुद-ब-ख़ुद प्रयत्नशील होंगे । वैसे सीधी सादी बात तो यह है कि जो कुछ हो, सब उसको दे डाले :''शीश दिये यदि हरि मिलें, तो भी सस्ता जान'' । बुज़ुर्गों ने तस्लीम व रज़ा की हालत को आत्म समर्पण समझा है । एक नुस्ख़ा अब मैं बताता हूँ-बस ''तड़प'' उस तक पहुँचने की । अगर शुरु में असल पैदा न हो, तो उस की नक़ल ही करें । दीवाने को कोई शख़्श लगातार नक़ल करता रहे, तो लाज़मी तौर पर वह दीवाना हो जायेगा । इसी तरह यदि उस तक पहुँचने की तड़प की नक़ल ही इन्सान करता रहे, तो आख़िर में असल प्राप्त होकर रहेगी । आमीन ।

❑❑❑

शुभ संदेश

साधारणतः लोगों में यही विचार फैला हुआ है कि केवल क्रिया ही जो हमें बताई जाती है, वह स्वयं पूर्णदशा पर पहुँचाने के लिये यथेष्ट है । इस के अतिरिक्त उन का विचार दौड़ता ही नहीं । यदि हम अपनी नींव, जिस पर हमें आध्यात्मिकता का भवन बनाना है, राजयोग बतलाते हैं, और जो वास्तव में है भी, तो सम्भव है कि लोगों का विचार इसकी तह तक न पहुँचता हो और केवल नियमों के पालन तक ही उनकी दृष्टि रहती हो । यह अवश्य है कि मेरे साथ Transmission (प्राण-आहुति) की भी हवा लगती रहती है । परन्तु फिर भी एक वस्तु जो शेष रह जाती है, वह है प्रेम और भक्ति । क्रिया (अर्थात् ध्यान) के साथ यह चीज़ चलना आवश्यक है । श्री कृष्ण जी महाराज ने राजयोग में इस चीज़ को भी सम्मिलित किया था, जिससे शीघ्रता हो जावे और साधक अपने लक्ष्य पर शीघ्र ही पहुँच सके । किन्तु इन बातों को अपने में उत्पन्न करना आप ही का काम है । उपाय यह अवश्य है कि ईश्वर का सतत् स्मरण रखने का प्रयत्न किया जावे । इस में लोग यह एतराज़ कर सकते हैं कि मानव-मस्तिष्क प्रति समय एक ही ओर लगा हुआ नहीं रह सकता है, इसलिये कि मस्तिष्क इतना थक जायेगा कि कदाचित वह इसे एकाध दिन ही स्थायी रख सकता है । मैं साधारणतया लोगों में यही शिकायत देखकर कुछ आवश्यक बातें लिख रहा हूँ ।

जो भी कार्य आप करते हैं, उसको यह समझकर करें कि ईश्वर की आज्ञा है, इसलिये मेरा कर्तव्य है, तो स्मरण की दशा अवश्य बनी रहने लगेगी तथा इस का एक लाभ यह होगा कि संस्कार बनना बिल्कुल बन्द हो जायेंगे । हर समय स्मरण रखने से ईश्वर में लगाव भी उत्पन्न हो जाता है और, भाई क्योंकि हमारे विचार में गर्मी उपस्थित है, इसलिये कुछ उभार की दशा (अर्थात् प्रेम के उभार की) उत्पन्न होने लगती है, तथा धीरे-धीरे इसी के द्वारा भक्ति का पूर्ण रूप आ जाता है । ज़रा लोग इस की आदत डाल कर तो देखें, फिर देखिये कि प्रेम उत्पन्न होता है कि नहीं । यह वस्तु तो नितान्त आवश्यक है । दूसरी, सदाचार की बात, जो अत्यन्त आवश्यक है; वह यह कि हम

कोई कर्म ऐसा न करें कि जिससे लोग उंगली उठायें । हमारे दैनिक जीवन के नियम तथा सब के साथ व्यवहार बहुत ही भला एवं सीधा-सादा होना चाहिये । इससे आप के मन को भी सन्तोष मिलेगा और शान्ति की अवस्था का आरम्भ स्वयं ही आप के अन्तर में प्रस्फुटित होने लगेगा । एक भाई ने मुझ से पूछा था, कि जब लोग प्रेम करना नहीं सीखते, तो अभ्यास के नियम (method) में कोई ऐसा संशोधन होना चाहिये, जिससे यह बात भी सिद्ध हो सके । सोचते-सोचते ईश्वर ने मेरी सहायता की और यह बात भी मेरी समझ में आ गई । चुनांचे जो अभ्यास आप कर रहे हैं, उस में थोड़ा सा संशोधन कर दिया गया । मैंने लोगों को दो-एक अभ्यास बतलाये हैं । जो उसमें यह चीज़ पैदा कर लें कि जिस का ध्यान मैं कर रहा हूँ, वह (अर्थात् ''ईश्वर'') मुझको अपनी ओर आर्कषित (खींच) कर रहा है । अर्थात जो लोग ईश्वर की ज्योति का ध्यान हृदय में (जैसा कि मैंने उन्हें बतलाया है) करते हैं, वह ध्यान करते समय इस बात पर भी ध्यान लगा दें कि ईश्वर का प्रकाश जो हृदय में उपस्थित है, वह मुझे अपनी ओर आकर्षित (खींच) कर रहा है । फिर आप लोग देखें कि भक्ति व प्रेम कैसे उत्पन्न नहीं होता है । हाँ इतनी बात अवश्य है और इतना मैं अवश्य कहूँगा कि लगाव उत्पन्न करना आप को भी चाहिये, इसलिये कि यदि आप लोग यह बात नहीं करते, तो सेवक (बन्दगी) का कर्तव्य, जो आप पर आवश्यक है, आप पूर्ण नहीं करते और फ़क़ीरी (साधुता) या मनुष्यता इसी में है कि कर्तव्य-पालन पूर्ण हो जाये । वह मनुष्य, मनुष्य ही नहीं, जिसकी दृष्टि अपनी ओर नहीं जाती तथा वास्तविक खोज इसी में है कि हमारी दृष्टि हर समय अपनी ही ओर रहे, और यह वस्तु हमको धुर से मिली है । यदि इसी बात का नियम अभ्यासी कर ले (अर्थात् दृष्टि को आन्तरिक करता जावे) तो आप की स्थिति वहीं पर होगी, जहाँ से कि यह वस्तु हमें मिली है अर्थात् हम मूल भण्डार (असल भण्डार) में अपना एक चिन्ह स्थिर कर देते हैं । फिर हमें केवल अपने विस्तार का रूप उत्पन्न करना शेष रह जाता है ।

अब विस्तार का रूप कैसे पैदा करें ? इस के लिये यही अभ्यास, जो मैंने बताया है उस का एक अंग है (अर्थात् ईश्वर-ध्यान के साथ अंतर्मुखी रहने का प्रयत्न करें)। इतनी सरल बातें मैं बताता हूँ, जिनका कारण मनुष्य के लिये (गृहस्थी के साथ सभी) बहुत ही सरल है, यदि उन में ईश्वर-प्राप्ति की तड़प हो । ईश्वर कहीं लोगों में सच्ची तड़प उत्पन्न कर दे और ईश्वर करे ऐसा ही हो, तो फिर काम बनते देर नहीं लगती । लोगों को शान्ति की खोज है तो भला इस बेचैनी (तड़प) के लिये कौन तैयार हो ? मैं आप को

विश्वास दिलाता हूँ कि जो आनन्द इस बेचैनी (अर्थात् ईश्वरीय स्मरण) में है, वह शान्ति में नहीं मिलता । जिस को लोग शान्ति कहते हैं, वास्तव में मेरी समझ में वह कमाल की चीज़ है, जिसका तलछट अभ्यास में कुछ अवश्य मिल जाता है । और जो इस बात का प्रमाण देता है कि उस का कोई मुख्य बिन्दु (Centre) अवश्य है । बेचैनी बढ़ते-बढ़ते अर्थात् जब यह बेचैनी कमाल (सीमा) पर पहुँचती है और सीमा को पार कर लेती है, तब शान्ति (वास्तविक) का आरम्भ होता है । उस से आगे अभी लिखना बेकार है । लिखने का अर्थ केवल यही है कि लोग "उससे" (ईश्वर से) मिलने के लिये बेचैन रहें और इसी से मुझे भी शान्ति मिलेगी । यदि आप लोग अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि जो कुछ भी सेवा मैं लोगों की कर रहा हूँ, उसके बदले में मुझे शान्ति मिले तो यही उपाय हो सकता है कि आप लोग भी बेचैन रहें ।

❑❑❑

दिव्य दृष्टि

मनुष्य की दो आँखें तो साधारणतया सब जानते ही हैं; परन्तु वैज्ञानिकों का कथन है कि मनुष्य के ललाट में एक गुत्थी ऐसी होती है जिस का रूप आँख के समान होता है और जिस का सम्बंध दिव्य दृष्टि से होता है, यही मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा गया है । परन्तु इस के बारे में जो कुछ भी ज्ञान मृतक शरीर की चीड़-फाड़ करने से प्राप्त है वह अधूरा है । इसका सही अंदाज़ा योग के द्वारा ही हो सकता है । महर्षि पतञ्जलि जी महाराज ने अपने ग्रन्थ में संयम की विधि का वर्णन किया है और यही योगी का सब से बड़ा अस्त्र है । इसके द्वारा एक योगी अपने आत्मिक बल से अपने शरीर के अन्दर की प्रत्येक बात व दशा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । शरीर के अन्दर की कुल कलें चलती हुई देख सकता है । शरीर के किसी भी भाग का पूर्ण चित्र उस की दृष्टि में आ जाता है और वह जहाँ पर जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, प्रयोग कर सकता है । छोटी से छोटी कोई बात भी उसकी दृष्टि से छिपी नहीं रहती । इस के देखने की विधि यह है कि जिस स्थान का ज्ञान प्राप्त करना है, उसको फैलाकर उस का पूर्ण प्रभाव योगी अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा वायु-मंडल में उत्पन्न कर देता है तथा फिर उस का सूक्ष्म निरीक्षण करता है । इस प्रकार वहाँ का पूर्ण चित्र उस की दृष्टि में आ जाता है तथा इसमें समय भी बहुत कम लगता है । हाँ उसके प्रभाव क़ो देखने और समझने में कुछ समय अवश्य लगता है ।

अब इस दिव्य-चक्षु के विषय में अपना निजी निरीक्षण तथा अनुभव जो योग द्वारा मैंने किये हैं, पाठकों के सम्मुख रखता हूँ । इस गुत्थी में जिसे ''Penial Eye'' कहा गया है, तीन रंग होते हैं । सामने वाला भाग चमकदार होता है तथा इसकी बनावट रेत के कणों के समान होती है, यही बाहरी भाग बुद्धि का स्थान है । इसके पीछे का भाग अर्थात् बीच वाला भाग कुछ स्याही लिये हुये जामुन के रंग का होता है । सब से पीछे का भाग कुछ लाली लिये होता है और यही ''Divine Intelligence'' का स्थान है । योग में पहले यही बाहरी भाग जो चमकदार है, खुलता है । जब मनुष्य इसमें भली प्रकार

प्रवेश कर लेता है, तब मध्य भाग खुलना प्रारम्भ होता है तथा उसमें चमक उत्पन्न हो जाती है, परन्तु उस चमक में जामुन के रंग की झलक अवश्य रहती है । सब से बाद में अन्तिम भाग खुलने की बारी आती है और उसमें चमक पैदा होने लगती है । जिस योगी को यह तीनों दशायें प्राप्त होती हैं वह उच्च श्रेणी का योगी होता है । आगे बढ़ने पर यह दोनों रंग भी समाप्त हो जाते हैं, और एक ही दशा अर्थात् चमकीलापन रह जाता है । इस स्थान का सम्बंध शुक्र के तारे से है, और जिस मनुष्य को यह दशा पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाती है उस को शुक्र के तारे पर Mastery अर्थात् आधिपत्य होता है । इस ग्रन्थि का सम्बंध "Spinal Chord" से बिल्कुल नहीं है, बल्कि दिल के दाहिने भाग से है । जब यह स्थान पूर्ण रूप से खुल जाता है और उससे नीचे के चक्र शुद्ध हो जाते हैं; तभी Divine wisdom (दैविक बुद्धि) का आरम्भ होता है । इसी लिये योग में इस स्थान को बुद्धि का स्थान कहा है । इस से कुछ आगे बढ़कर एक और स्थान होता है, जिसके जाग्रत हो जाने पर आन्तरिक बातों का अनुभव बहुत अच्छा हो सकता है । अर्थात् वायुमंडल में जो सुविचार या कुविचार तैर रहे हैं, उनको जाना जा सकता है । आध्यात्मिकता के सम्बंध में दूसरों की आंतरिक स्थिति जानने में भी यही स्थान सहायक होता है । इस का रंग भूरा होता है । इस स्थान पर पहुँच कर हमारी दिमाग़ी (Intellectual) दौड़-धूप समाप्त हो जाती है और आध्यात्मिकता आरम्भ हो जाती है । इसमें पूर्ण रूप से प्रवेश कर लेने के पश्चात् इस का भूरापन जाता रहता है, और यह स्थान भी कुछ प्रकाशित हो जाता है । इससे आगे की ग्रन्थि पर कोई रंग नहीं होता है । कहने को कुछ अधिक सफ़ेद, कुछ हल्का अंधेरा मिला हुआ रंग कह लो, या दूसरे शब्दों में न प्रकाश, न अन्धकार । इसकी सहायता से हम उन घटनाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जो इस संसार में घटित होने से पहले ब्रह्मांड में सूक्ष्म रूप से घटित हो चुकी हैं । परन्तु यह तभी हो सकता है जब हम इस दशा को पूर्ण रूप से अपना लें ।

तीसरी आँख, जिस के विषय में कहा गया है कि यदि खुल जाये तो क्षण भर में समस्त संसार को नाश कर सकती है । इस का इन ग्रन्थियों से कोई सम्बंध नहीं है । यह Destructive Eye (विनाशकारी नेत्र) जैसा कि शिवजी के विषय में वर्णन है, सिर के पीछे (Occipital prominence) गुद्दी के स्थान पर है; जिस के विषय में मैं अपने अंग्रेजी के ग्रन्थ Efficacy of Rajyoga में वर्णन कर चुका हूँ । यही विनाश कारी नेत्र, श्री कृष्ण जी महाराज महाभारत युद्ध के समय अट्ठारह दिन तक बराबर खोले रहे, और जिस के

परिणाम स्वरूप इतना विनाश हुआ । इतनी सरल बातें मैं बताता हूँ, जिन का करना मनुष्य के लिये (गृहस्थी के साथ भी) बहुत ही सरल है, यदि उनमें ईश्वर-प्राप्ति की तड़प हो । ईश्वर कहीं लोगों में सच्ची तड़प उत्पन्न कर दे और ईश्वर करे ऐसा ही हो, तो फिर काम बनते देर नहीं लगती । लोगों को शान्ति की खोज है तो भला इस बेचैनी (तड़प) के लिये कौन तैयार हो ? मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि जो आनन्द इस बेचैनी (अर्थात् ईश्वरीय स्मरण) में है, वह शान्ति में नहीं मिलता । जिस को लोग शान्ति कहते हैं, वास्तव में मेरी समझ में वह कमाल (परिपक्वता) की चीज है, जिसका तलछट अभ्यास में कुछ अवश्य मिल जाता है । और जो इस बात का प्रमाण देता है कि उस का कोई मुख्य बिन्दु (centre) अवश्य है । बेचैनी बढ़ते बढ़ते जब यह बेचैनी कमाल (सीमा) पर पहुँचती है और सीमा को पार कर लेती है, तब शान्ति (वास्तविकता) का आरम्भ होता है । उस से आगे अभी लिखना बेकार है । लिखने का अर्थ केवल यही है कि लोग 'उससे' (ईश्वर से) मिलने के लिये बेचैन रहें और इसी से मुझे भी शान्ति मिलेगी । यदि आप लोग अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि जो कुछ भी सेवा मैं लोगों की कर रहा हूँ, उस के बदले में मुझे शान्ति मिले, तो यही उपाय हो सकता है कि आप लोग भी बेचैन रहें ।

❑❑❑

वास्तविक भक्ति

इस दुनिया में बेशुमार इन्सान हैं । सतयुग से अधिक । किस अर्थ में- संख्या में और भक्ति में ! घर-घर भक्ति मिलेगी । औरतें अपने राग और ढोलक में मस्त मिलेंगी । मन्दिर में पूजा भी होगी, ख़ैरात भी तक़सीम होगी, मान्ता इस क़दर होगी कि कोई महीना ख़ाली नहीं । बेशुमार स्त्रियाँ यही करती मिलेंगी । पुरुषों का यह हाल है कि धार्मिक लेक्चर में जाते मिलेंगे, और मन्दिर में आवाज़ लगाते भी । सत्यनारायण की कथा तो घर घर पढ़ी जाती है । जितनी बातें हैं, सब यह ज़ाहिर कर रही हैं कि किसी न किसी शक्ल में भक्ति ज़रूर हो रही है । स्तुतियों का यह ठिकाना है कि उन से किताबें भर गईं । गाने वालों का यह हाल है कि सड़क पर नारे लगाते चले जाते हैं । बहस का यह आलम है कि कोई शख़्स तुरीय और तुरीयातीत से कम ख़्याल ही ज़ाहिर नहीं करता । जीव और ईश्वर का हर जगह चर्चा ही चर्चा है । भला यह भक्ति आपको किस ज़माने में मिलेगी ! यह भक्ति और यह ज़ोर; भाई, इसी ज़माने में मिलेंगे । और गुरुओं की संख्या, जो इन पूजाओं को बतलाते हैं, कदाचित किसी ज़माने से कम न होगी । यहाँ हर व्यक्ति कोई न कोई अमल बताने को तैयार है ! अगर यह सब बातें लोग एक साथ करने लग जायें, तो मैं समझता हूँ, कि आसमान गूँज उठेगा । मगर भाई, वह गूँज आसमान तक ही रह गई, दिल पर वापस नहीं हुई । उस का असर शून्य तक ही सीमित रहा । उसने हमारा साथ छोड़ दिया । और हम ज्यों के त्यों रहे । स्तुति करते-करते ज़माना बीत गया । बुड्ढे हो गये, कुछ न मिला । हम ऐंठे भी, रोये भी, सब कुछ किया, मगर भाई, यह सब चीजें अपनी ही जगह पर रह गईं, और हम कोरे के कोरे । हम ने गोया सब कुछ अपने में से निकाल कर फेंक दिया, मगर ग्रहण कुछ न किया । रवानगी ही रही, आमद कुछ न हुई । यह नतीजा अवश्य हुआ कि हम अपने ख़्याल से भक्त बन गये, और लोगों ने भी इसी लिहाज़ से हमारी क़द्र की । जहाँ बैठे, भक्त ही बनकर उठे, जहाँ पहुँचे, तारीफ़ ही हुई, जहाँ गये, दूसरों की निगाह में भले आदमी ही सिद्ध हुये । हमें अपने सब कार्य

कलाप का बदला मिल गया, और कितनी जल्दी ! नतीजा यह भी हुआ कि अब हम अपनी मजलिस में भक्त माने जाने लगे, और मेहनत की क़दर ख़ूब बढ़ चढ़ कर हुई । गुरु की पदवी मिल गई । अब, गोया, भक्त मण्डली में हम और भी सरताज बने । हम इसी के होकर रह गये । हमारी दौड़ अब ख़त्म हो गई । हमारी ख़ुशामद का बदला हम को मिल गया ।

यह सब बातें जो हमनें की थीं, ईश्वर की ख़ुशामद थी । हर काम का नतीजा ज़रूर होता है, लिहाज़ा इस का भी नतीजा हुआ, और कैसा अच्छा ! ग़ौर की निगाह से आप देखें, तो जितनी इबादत अब इस ज़माने में हो रही है, सिवाय ईश्वर की ख़ुशामद के उस की कोई हक़ीक़त नहीं । ख़ुशामद में ग़रज़ भी शामिल होती है, और इसीलिये लोग इसे मुनासिब समझते हैं । जब तक दिली जज़्बा पैदा न हो, इबादत नहीं कही जा सकती । यह ख़ुशामद है, इसी लिये लोग सब कुछ करते हुए भी, उस महान निधि से, जो लाजवाब और अटल है, वंचित रहते हैं ।

मेरा इस कुल मज़मून से मतलब यह है कि हमारे यहाँ अभ्यासियों में तरक़्क़ी के चिन्ह ज़ाहिर इस वजह से नहीं होते, कि वह ईश्वर की ख़ुशामद में लगे रहते हैं । भक्ति का जज़्बा वास्तविक अर्थ में पैदा नहीं होता । ख़ुशामद और भक्ति का अन्तर स्पष्ट ही है । ख़ुशामद में ग़रज़ छिपी हुई है और भोंडी ग़रज़ । भक्ति में भी ग़रज़ होती है, मगर उस ग़रज़ के बाद कोई ग़रज़ हो ही नहीं सकती, और न ख़्याल में आती है ।

यदि आप निगाहे ग़ौर से देखें, तो वास्तविक भक्ति के साथ पाई जाने वाली ग़रज़ वास्तव में ग़रज़ नहीं है । बल्कि यह तो अपने घर की याद है, जो बहुत दिनों तक सफ़र करते करते आ ही जाती है । बुलबुल को अपने खोये हुये आशियाने का ख़्याल ज़रूर आता है, भले ही वह कितना ही अपने ख़्याल को गुल (फूल) में लगाये रक्खे । हम यदि अपने घर का ख़्याल न रक्खें, और वास्तविक ध्येय की याद में रहें, तो यह सम्भव नहीं कि हम अपने असल ठिकाने की याद से ग़ाफ़िल हो जायें । यह असल ठिकाना और कुछ नहीं, बल्कि वह ठिकाना है जिस के बाद ठिकाना ही नहीं रहता, जिसके बाद ग़रज़ ही नहीं रहती । इस ग़रज़ को ग़रज़ कहना वास्तव में ग़लती है ।

ख़ुशामद में लगाव नहीं होता । इधर ख़ुशामद के अल्फ़ाज ख़त्म हुये, और आप उस से अलग । फिर कुछ मतलब नहीं । यही लगाव निरन्तर स्मरण (Constant Remembrance) है और इसी को भक्ति कह सकते हैं, जब तक

अभ्यासी में यह बात पैदा न हो जाये, उस की हैसियत सिवाय भाड़े के टट्टू के कुछ नहीं है । इस ज़माने में जितनी पूजायें हो रही हैं, लगभग सभी ख़ुशामद के दायरे में आ रही हैं, और उस से जौ भर नहीं हटतीं । इसी से लोग तमाम उम्र 'ता-ता-री-री' करते हैं,और कुछ लाभ नहीं होता । जब किसी बादशाह की सल्तनत में बड़ी संख्या ख़ुशामदियों की एकत्र हो जाती है, तो क़ाबलियत अपने असल पैमाने पर काम करना छोड़ देती है और निज़ाम बिगड़ने लगता है । फिर क्या होता है कि बादशाह के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि किस प्रकार उन की ख़ुशामद छुड़ाई जाये जिससे कि वह असल काम के बनें, और इसी के लिये कोशिश की जाती है । हो सकता है कि इस कोशिश में उन पर जब्र और सख़्ती की जाये, ताकि वह सुधरें । बहुत मुमकिन है कि सर्वशक्तिमान प्रकृति ने यह रुख़ ले लिया हो ।

(एक पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

एतक़ाद

मेरी ज़िन्दगी ज़िन्दगी ही नहीं रही। अगर बक़ा के दायरे में हूँ तो ज़िन्दा जावेद और अगर उस से आगे तो उस के लिये जो चाहे वह लफ़्ज़ इस्तेमाल कर लें। अगर ऐसा है तो उसमें जब ठनकार पहुँचती है तो मुझे होश आ जाता है। यहाँ की ठनकार उसी की बेहतर सूरत में हो सकती है जो इस हालत से "उबूदियत" हासिल करले, यानी अपने आप को इतना ढीला छोड़ दे जैसे कि मुर्दा-ब-दस्ते गुस्साल"। यह कैफ़ियत विश्वास से प्रारम्भ होती है। विश्वास उस एतक़ाद की हालत है जिसमें तालीम करने वाले की हर बात सही मालूम पड़े और दिल क़बूल कर ले। यहाँ तक माद्दियत है। इस से वह चीज़ आ जाती है, जिस पर आइंदा इमारत बनाना है। गोया यह बुनियादी पत्थर है। यक़ीन, एक चीज़ ऐसी है जो ख़्याल के पर्दे को चाक कर देती है, और भाई बिना इस चीज़ के काम नहीं चलता। यही चीज़ हस्त है, जिस में दाखिल होकर इन्सान अपने आप को भूल जाता है।

अगर हम को किसी पर यक़ीन है, तो एक चीज़ देखना आवश्यक है, जिस का सोहबत से पता चलता है कि आया यह शख़्स इस क़ाबिल भी है कि उस पर यक़ीन किया जाये। अगर यह पता चल जाये तो फिर भाई, ज़रूर एतक़ाद जमा ले। ईश्वर को हमने देखा नहीं, उस की कोई शक्ल नहीं और न ही कोई रूप। अतः इस यक़ीन के सहारे हम चल रहे है।। हम जब किसी इन्सान पर यक़ीन लाते हैं तो क्या होता है-उस की शक्ल सामने और ख़्याल पसेपुश्त। अगर वह इन्सान ज़ाती हैसियत से चिपका हुआ है, तो हम भी किसी न किसी हद तक ज़रूर चिपक जाते हैं। अगर हम ऐसे इन्सान से निस्बत नहीं जोड़ते, तो असल से चिपकना सम्भव नहीं। इसलिये हर लिहाज़ से यह बात लाज़िम आती है कि "जिसको हमने देखा है और अगर उस की निस्बत असल से जुड़ी है तो हम उससे सम्बंध या निस्बत ज़रूर क़ायम कर लें"। यह रूहानियत की पहली सीढ़ी है। अगर इत्तफ़ाक़ से कोई ऐसा शख़्स मिल जावे, जिस की मिसाल हमारे गुरु महाराज ही हो सकते हैं कि जिसकी निस्बत इतनी मज़बूती से असल भन्डार से जुड़

गई हो कि दोनों हस्तियों में तफ़ावत नज़र न पड़े, तो भाई यह ग़ल्ती होगी कि ऐसे शख़्स पर यक़ीन न लाया जाए । आप (गुरु महाराज) अब भी मौजूद हैं, और बराबर रहेंगे; जब तक हर चीज़ का अपने असल में लय हो जाने का वक़्त बिला कम-व-कास्त न आ जावे । अगर हम किसी इन्सान से जो इन्तहाई तरक़्क़ी कर चुका है, सम्बंध क़ायम करने के लिये, मान लीजिये हम उसके साया से निस्बत क़ायम करते हैं, तो क़रीब क़रीब वही मतलब हल हो जाता है । मैं तो अभी तक यही समझ रहा हूँ कि मुकम्मल इन्सान को पा लेना, ख़्वाह किसी साधन से हो, ईश्वर को पा लेना है । अब मान लीजिये कि गुरु महाराज जैसी हस्ती अगर निगाह के सामने नहीं है तो भाई जिस से काम बनने की उम्मीद हो और जो आप (गुरु महाराज) से वाबस्ता रह चुका हो, उसी से निस्बत जोड़ें और यक़ीन करें, इस कहावत के अनुसार कि ''जहाँ नहीं रूख वहाँ अरण्ड रूख ।''

एक एतक़ाद, भाई इस तरह का भी होता है कि ''अब तो-सम्बंध जोड़ लिया, मुक्ति तो हो ही जायेगी; कुछ करने की क्या ज़रूरत है ?'' इस को भोंडा एतक़ाद कहते हैं । असल एतक़ाद का अर्थ यह है कि हम उस बुनियाद पर पत्थर जमा दें, जिस पर वास्तव में पत्थर हमारे सिखाने वाले ने अपनी तरक़्क़ी के लिये रखा था । यह एतक़ाद शाज़-व-नादिर होता है, और उस क़िस्म के शिष्य ख़ाल-ख़ाल हैं । गोया यह भी बुरा नहीं, न होने से जो कुछ हो जाये, अच्छा है । मगर सब से अच्छी बात वही है जो मैंने अभी लिखी । इस के लिये लताफ़त की ज़रूरत है, और इस का नतीजा जल्दी ज़ाहिर होता है ! जब हम ऐसे एतक़ाद पर बुनियादी पत्थर रखते हैं तो हमारे द्वारा अपने आप वही काम होने लगते हैं जिन की हैसियत और अन्दाज़ सिखाने वाले में है ।

वह बुनियादी पत्थर जिस पर सिखाने वाले ने अपनी इमारत बनाई है, अपने में जिसने रखा, उसे कोई और धुन सिवा ईश्वर प्राप्ति के नहीं हो सकती । ऐसे लोग कम मिलते हैं । यहाँ तो, या तो घर गृहस्थी की फ़िक्र ज़रूरत से ज़्यादा या फिर राजनीति के नशे में घूम रहे हैं, और यह फ़िक्र परेशान किये है कि यह कैसे दुरुस्त हो कि लोगों को चैन मिले । अगर उन को यह जवाब दे दिया जाये कि अपनी अख़्लाक़ी हालत ठीक करो, ग़ुरबत में अमीरी का मज़ा देखो, तो शायद यह बात उनको पसन्द न आवे । क्या अपना सुधार, यदि हर एक को यह फ़िक्र हो जाए, काम की चीज़ न होगी ? ख़िदमत करने को मैं मना नहीं करता, मगर ख़िदमत ऐसी होनी चाहिये कि

अपने को फ़ायदा पहुँचे और दूसरे का अख़्लाक़ सुधरे । अख़्लाकी कमी पूरी हो जाना, गोया तबियत में समत्व (Balance) पैदा कर लेना है; और यह बग़ैर ईश्वर की कृपा के नहीं होता । और ईश्वर की कृपा तभी होती है, जब हम उसके अहल बनते हैं । ख़ुदशिनासी कहा गया है । यह क्यों ? इसलिये कि आप अभ्यास करते करते अपने असली मक़सद को जान जावें ।

जो चीज़ ईश्वर ने हमें दी है, उसी को लेकर चलना पड़ता है, और फिर उस को उसी में फ़ना कर देना पड़ता है । इस वाक्य की व्याख्या की आवश्यकता है । अपनानियत और ख़ुदशिनासी करा देनी है । इस के फिराव या घुमाव में असली ताक़त छिपी हुई है, और यही वह बुनियादी पत्थर है जिस पर हम को क़दम रखना है । किसी को गुरु मानने का मक़सद यही है कि अपने आप को फेर कर उस पर क़दम रख दें । बखेडेपन का नाम रुहानियत नहीं । उसमें होते हुए उस से आज़ाद-यह असल चीज़ है । जब एक धुन सवार हो जाती है तो दूसरी धुन आना मुश्किल पड़ जाता है । और यह नुक़्स (दोष) आम (सामान्य) है । इसी लिये लोगों की तरक़्क़ी नहीं होती ।

जिसका जो हो रहा, वह भी उस का हो गया-यह क़ायदा कुल्लिया है । इस में Exception नहीं । अब आप निगाहे-ग़ौर से देखें, अगर फ़र्दियत निगाह में हो, तो ऐसा कौन सा शख़्स है कि जिसने ग़ुलाम को ठुकरा दिया हो, और ख़ास कर वह ग़ुलाम जो क़ैद-व-बन्द से आज़ाद हो । सेवा करना जिस का धर्म हो, और सेवकाई का ख़्याल न हो, पूजा करना उस का धर्म हो और पूजा का ख़्याल न हो; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से हो, मगर उस के होने का ख़्याल न हो; मज़हब और संस्था से ताल्लुक़ रखता हो, मगर उसको उसमें होने का ख़्याल न हो । क्या यह मिसाल कहीं मिलेगी ? ज़रूर मिलेगी, दुनिया ख़ाली नहीं । अपनी संस्था में ही मिसाल नक़ल करने लायक़ मिलेगी, जिसे इन बातों से आप बहुत कुछ हल्का पावेंगे । यह ज़रूर है कि किसी वक़्त कुछ चिन्ह दबे हुये उसमें भी मिल जायें, मगर उन को हल्का कहना ही पड़ेगा । क्या उबूदियत अर्थात् (Submissive condition और Surrender) की ऐसी मिसाल इस लायक़ नहीं कि उसकी नक़ल की जावे, यदि लोग उसकी नक़ल जो हमारे गुरु महाराज ने अपने गुरु महाराज के साथ की थी, नहीं कर सकते ? जब किसी की ऐसी हालत हो, तो क्या वजह है, कि रहमते-इलाही मौजज़न न हो ? रहमत (कृपा) उसी को कहते हैं कि बिना पैमाने को जाँचे हुए एक दम गिर जाये । हज़रत मूसा पर जब

तजल्ली नाज़िल हुई तो पात्र (ज़र्फ़) का ख़्याल न था। उनका ज़र्फ़ तजल्ली नाज़िल होते ही जवाब दे गया था, और वह राऽश की हालत में बेहोश पड़े थे, और कोह-तूर जल कर स्याह हो चुका था। यह इबारत मैंने इसी लिये लिखी कि लोग अब भी होश में आ जावें। किसी की तारीफ़ करना मक़सद नहीं, बल्कि लोगों को उभारना है।

जब तक इन्सान कोह-तूर नहीं बनता, जज़्बात के झुलसने की ताक़त पैदा नहीं होती। तजल्ली वहीं नाज़िल होगी, जिसमें जज़्बात के झुलसने का उभार पैदा हो गया हो, यानी जिस की कैफ़ियत ऐसी बन गई हो कि तजल्ली को मदऊ कर सके। दूसरे अर्थों में जो मरने से पहले मर गया हो, अपने जिस्म को ईश्वर की याद में ऐसा चूर कर दिया हो या याद की गर्मी से ऐसा झुलस गया हो कि व्यावहारिक दृष्टि में ज़िन्दगी के आसार मद्धिम पड़ गये हों। यदि ऐसा शून्य (Vacuum) बन गया हो उस मालिक की याद की गर्मी से, तो मुम्किन नहीं कि उस पर तजल्ली की असल सूरत की झलक न गिरे। ईश्वर भी चाहे तो उस की ताक़त नहीं कि इस चीज़ को रोक सके, क्योंकि इस के विरुद्ध करने से उस का क़ानून ख़त्म होता है और नापायदारी पैदा होती है। ये वह चीज़ है कि जिसने कर ली और जो उसमें काफ़ी तौर से सुलग चुका, मुम्किन नहीं कि वास्तविक अर्थ में उस मालिक को उसकी ख़बर न पैदा हो जाये। मगर भाई इस ख़बर के लिये बेख़बरी की ज़रूरत है। सुलगाव हमेशा याद से पैदा होता है, और कोई सूरत मालूम नहीं होती। रस्म के तौर पर अभ्यास करना केवल मरासिम को बढ़ाता है।

-एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत।

❑❑❑

हमारी मंज़िल

यदि मैं इन्सानी पहुँच का ख़्याल बांधूँ, तो उस का यह आलम है कि बल्लियों कोई चढ़ाई करता चला जाये फिर भी उतनी ही चढ़ाई बाक़ी रहती है । और गुरुओं का यह हाल है कि रुहानियत (आध्यात्मिकता) प्रारम्भ होने से पहले ही अपने आप को कामिल (पूर्ण) समझ बैठते हैं, और लोगों को सिखाना शुरु कर देते हैं । और भाई, सीखने वालों का भी चरित्र इस क़दर बिगड़ चुका है कि उनमें लाल और रंग की तमीज़ (विवेक) बाक़ी नहीं रही । और वह इतने Mechanical (यन्त्रवत) बन गये हैं कि उन्हें Mechanical Engineer की ही तलाश रहती है । उन का दिल ज़्यादातर उन्हीं की कारीगरी और बनाई हुई चीज़ों पर गिरता है । अब जैसी उनकी निगाह या दिल बन गया, वैसे ही सिखाने वाले भी पैदा हो गये । उनको अगर कोई तालीम देना चाहे, तो उन्हीं के तरीक़े में तालीम देने से वह यह समझते हैं कि वाक़ई तालीम है । और उनकी ज़्यादा ख़ता भी नहीं । प्रवचन सुनते सुनते उनकी यह हालत हो गई है कि धतूरा खाना, चरस पीना, भंग का इस्तेमाल ही उनको पसन्द है । वाक़ई उन्होंने अपनी दोस्ती इन नशीली चीज़ों से पैदा कर ली है और इस ज़माने में ऐसे Transmitter (तवज्जह देने वाले) भी मौजूद हैं कि यही चीज़ें दूसरे में दाख़िल करते हैं और सीखने वाले को भी यह चीज़ें पसंद आती हैं और इसी को "असर" कहते हैं । यह मिसाल आजकल क़ाबिल गुरु और क़ाबिल चेलों की है । यहाँ तक लोग अगर आ गये तो बस फिर वह यह समझने लगते हैं, कि अब तो वह दौलत मिलने लगी है और वह नशा आने लगा है, जो उनको नसीब न था । कोई हालत अगर ज़रा अजीब हो गई, समझ लिया कि यह विशेषता आध्यात्मिक शक्ति ही की बदौलत है । और हम को बस ऐसे ही गुरु की क़दर लाज़िमी है और बस जीवन का चरम लक्ष्य इसी से प्राप्त हो सकता है । ऐसे शिष्यों ने अपने ऐसे गुरुओं से यह सवाल कभी नहीं किया कि भाई यह transmission (तवज्जह) जो हम को तरक़्क़ी देता है, क्या असल भन्डार का है या उसके अलावा ? मान लीजिये, ऐसे गुरुओं से मैं सवाल कर बैठूँ, तो वे लोग यही

जवाब देंगे कि यह नशीला transmission (तवज्जह) बस असल भंडार से ही है, और बिल्कुल ईश्वरीय फ़ैज़ है । इस जवाब पर क्या मेरा ख़्याल यह पैदा नहीं हो सकता कि ईश्वर भी भंगड़ी या नशेबाज़ है, तभी तो यह चीज़ उसके पास से ऐसी आ रही है । अगर वह वास्तव में ऐसा है, तो मैं समझता हूँ कि जिनको नशा पसन्द नहीं है और जिन्हें नशीली चीज़ों से नफ़रत है, वह ऐसे ईश्वर को सात बार सलाम करेंगे और सम्बंध रखना पसन्द न करेंगे ।

एक बात आप लोगों को यह बताता हूँ कि जिस गुरु में Senses (इन्द्रियासक्ति) ख़त्म नहीं हुई या बहुत कुछ मन्द नहीं पड़ गईं, उनसे नशा ही मिलेगा; क्योंकि असलियत का प्रारम्भ इन्द्रियों के मुअत्तल (शिथिल) होने के बाद से होता है । ऐसे व्यक्ति की तवज्जह में यह चीज़ पैदा नहीं होती जो मैंने ऊपर लिखी है । हाँ, प्रारम्भिक स्थितियों में अभ्यासी को कुछ नशा सा ज़रूर मालूम होता है । मगर उस को नशा नहीं कह सकते, क्योंकि किसी इन्द्रिय की शक्ति पर ज़ोर नहीं होता, बल्कि शान्ति और मगनता का अनुभव होता है, जिस से अभ्यासी अपने आप को ग़ैर महसूस करने लगता है; यानी जो हालत आमतौर पर आम लोगों की रहती है उससे ऊँचा उठा हुआ पाता है, और यह उच्चतर स्तर का प्रभाव होता है । बहुधा ऐसे अभ्यासी की झूमने को तबियत चाहती है और झूमने भी लगता है, इस को आत्मा का नृत्य कहते हैं, और यह बड़ा उच्चतर क़िस्म का नाच है ।

मैं देखता हूँ कि मुझे अभी कितना सिखाना है तो मेरे होश उड़ते हैं और चाहता यह हूँ कि घोल कर पिला दूँ । मगर घोलकर पीने वाले भी इक्का-दुक्का होंगे और यह मेरी क़िस्मत है । मुझे तो ऐसा अनुभव होता है कि जितना मुझे गुरु महाराज ने सिखाया है और सिखाना अब भी जारी है, उतना ही यदि किसी व्यक्ति को सिखाता हूँ तो फिर भी, जो आगे सीख रहा हूँ बाक़ी रह जाता है । अब क्या तरकीब हो सकती है कि वह भी बाक़ी न रहे । वह यही है कि लोग अपनी पूर्ण लय-अवस्था पैदा करें और यदि कहीं बिल्कुल घुल-मिल जावें, तो फिर कहना ही क्या । और भाई जितना मैं अब सीख रहा हूँ, यदि ऐसा आदमी कोई बनने की कोशिश करे तो उस की तरकीब यही हो सकती है कि मुझे अपने में लय होने के लिये मजबूर कर दे । इस की तरकीबें तो भाई वही हैं जिनको बुद्धिजीवी वर्ग कुफ़्र समझेगा ।

मेरी तमन्ना यह ज़रूर है कि मैं अपने साथ बैठने वालों को या वह लोग जो मुझसे रोशनी लेना चाहते हैं, केन्द्र के निकट पहुँचा दूँ और उस में तैरना

शुरु करा दूँ, उस के बाद ऐसे Points हैं जिन से प्रकृति पर अधिकार प्राप्त होता है और उस से काम लेने की शक्ति पैदा हो जाती है । यह चीज़ और है और यह हर शख़्स के हिस्से में नहीं आती है । जिस्म का हर ज़र्रा एक ताक़त रखता है और जितने प्रकार के ज़र्रे Universe (विश्व) में हैं सब जानदार में मौजूद हैं । रीढ़ की हड्डियों के जितने Points है उनमें बेशुमार ताक़तें भरी पड़ी हैं । उनकी तरफ़ किसी की निगाह नहीं जाती । कुन्डलिनी, कुन्डलिनी कह कर सब पुकार रहे हैं, और जो देखो वह कुन्डलिनी शक्ति को जगाने की आरज़ू रखता है । मेरे पास भी दो तीन आदमी ऐसे आये जो सिर्फ़ यही चाहते थे । दिमाग़ में जितने Cells (केन्द्र) हैं, उनमें जो मग़ज़ है उस का हर ज़र्रा विशिष्ट शक्ति रखता है और ऐसे करोड़ों ज़र्रे उस में मौजूद होंगे । इन चीज़ों का ख़्याल किसी में पैदा नहीं होता ताकि उनकी ताक़त को भी काम में लाया जावे । इन चीज़ों के मुक़ाबले में जो मैंने बयान की हैं, कुन्डलिनी एक खिलौना है । अगर मैं यह सब बातें किसी के सामने रखूँ तो कोई मेरी मानने क्यों लगा । इस लिये कि मैं क्या और मेरा कहना क्या । अगर इस का करिश्मा (चमत्कार) दिखाऊँ, तो भी लोग इतने संवेदनशील नहीं मिलते कि उसको अनुभव कर सकें । अतः लिखाये चला जाता हूँ कि मुम्किन है किसी वक़्त कोई इन चीज़ों पर ग़ौर करे । इसमें जो हालतें हैं शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकतीं, बल्कि बड़े अनुभव की आवश्यकता है ।

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग इन चीज़ों को लेने के लिये तैयार क्यों नहीं होते । मैं तो इसकी कुछ क़ीमत भी नहीं माँगता । मुफ़्त देना चाहता हूँ । क्या मुझमें कोई कमज़ोरी तो नहीं है कि मेरे कहने व लिखने का कोई असर नहीं होता । और भाई जब मुझ से यह चीज़ें कोई न लेगा तो सम्भव है कि मैं उनको फेंक कर चला जाऊँ जिस से कि मुम्किन है मेरे बाद ही कुछ लोग 'छपरा भर-भर कर सुहाग' उठा लें । भाई सच कहता हूँ मैं जैसा भी हो रहा हूँ उस के लिये Over flooded (परिपूर्ण) शब्द ही मिलता है । और इसी लिये अगर कोई इच्छा है जो मुझसे गई नहीं तो वह यही है कि कोई तिश्नालब (प्यासा) मिल जावे । मुझ में मेरा कुछ नहीं है बल्कि जो कुछ मेरे पास है वह हमारे गुरु महाराज की अमानत है, जो आप सबके लिये जमा है । मैं चाहता हूँ कि इस अमानत को अपनी ज़िन्दगी में आप लोगों के सुपुर्द कर दूँ, और इस बोझ से कन्धे को हल्का करके ख़ालिस चला जाऊँ । यदि सच पूछो तो मेरे पास अमानत को छोड़ कर अब जो कुछ भी है, वह न आध्यात्मिकता है, न वास्तविकता और न आनन्द । अब

यदि आप मुझसे यह पूछें कि फिर तुम्हारी मंज़िल क्या है तो दिल से यही जवाब निकलेगा कि मैंने तो भाई उसको भी गुम कर दिया है। मुझे तो अब कुछ दिखाई नहीं पड़ता, इसलिये मैं क्या कहूँ। मेरी आँखें पथरा चुकी हैं और मुर्दनी छा चुकी है, अब मुझे कौन पूछे। मुर्दा चिड़ियों पर तो शहबाज़ की भी निगाह नहीं जाती।

(एक पत्र से उद्धृत)

❑❑❑

लक्ष्य और साधन

मैं समझता हूँ कि **कमाल** इसी में है कि शुरू से ही **कमाल** को लक्ष्य किया जाये और आख़िर में बस यही रह जाये। यही ज़िन्दगी का मक़सद है-हब्बुल-अव्वल हब्बुल-आख़िर, यही उरूज है व नज़ूल है, और भाई यही मुख़्तसिरन शुरु में है और आखिर में भी। यही चीज़ निराकार और साकार से परे है। यही वह कैफ़ियत है जहाँ पर कि आदमी जब तक कि इस का एहसास रखता है, हैरत में रहता है। हैरत एक ऐसी चीज़ है कि जिसमें पैदा हो गई चीज़ें ख़ुद बख़ुद खुलना शुरु हो जाती हैं। चेतना की उच्च स्थिति (Super conscious state) जब नसीब होती है तो इस हैरत के औज़ार से प्रकृति (Nature) के मुआमलात और बहुत से उक़दे खोल देती है। पहली हैरत की बुनियाद यह होती है कि इन्सान अपनी ठोसता की हालत और सूक्ष्मता की हालत से मुक़ाबला अज़ख़ुद करने लगता है। जब उस को यह अच्छी मालूम पड़ने लगती है, तो फिर उसी में पड़े रहने को जी चाहता है, मगर मालिक की तवज्जह का यह असर होता है कि उस चीज़ में मुबरी की शक्ल अख़्त्यार करती है, लोच और नर्मी बढ़ती जाती है। यह लोच और नर्मी अपेक्षतः ज़्यादा सूक्ष्म होती है और इन्सान जब इस में घुसता जाता है, बेरूनी असरात जो उस के ख़ुद पैदा किये हुये हैं, उस तरफ़ से अदम-तवज्जही (Unmindfulness) हो जाती है। उस का जी उस अन्दरूनी हालत में ही रहना चाहता है। रहते-रहते जब उस की उपच की सूरत ज़्यादा बढ़ती है तो ठोसता से बेख़बर होने लगता है, यहाँ तक कि यह मंज़िल आ जाती है कि वह उसी में रहना और बसना शुरु कर देता है। दूसरे शब्दों में अगर उस को सालोक्यता की हालत कह लिया जावे तो ज़्यादा मौज़ूं होगा। इस की मोटी पहचान यह है कि जब यह सालोक्यता की हालत शुरु होती है, तो उसको ऐसा आराम मिलता है जैसे एक धूप का जला हुआ मुसाफ़िर बबूल के दरख़्त के साये के नीचे आराम महसूस करता है। जितना सम्बंध उस लोक से होता जाता है उतना ही आराम और सुकून क़ायम रहता है, और यह एहसास जगता हुआ मौजूद होता है कि मेरी पैदाइश आलमे-बाला

में हो चुकी है। इस का ख़्याल पहले से बाँधना ज़बूँ है। हम को ख़्याल अपने मक़सद की तरफ रखना चाहिये।

दुनिया में सुकून और शान्ति की बड़ी तारीफ़ है। यक़ीन जानिये, कि मैं बीस साल तक बेचैन रहा हूँ और इस बेचैनी में जो सोज़ व गुदाज़ था, सुकून में नहीं मिलता। यही एक चीज़ है, जो रास्ता बनाती है और मंज़िल तक पहुँचा कर ख़ामोश हो जाती है। अगर शुरु से यह हालत किसी में पैदा करना शुरु कर दूँ तो वह यही कहेगा कि मैंने सुकून व शान्ति के लिये पूजा शुरु की थी, किन्तु बढ़ रही है बेचैनी। नतीजा यह होगा कि मुम्किन है कि मेरी शक्ल से मुतनफ़्फ़िर हो जावे। मजबूर हूँ। इसलिये मैं यह कहता हूँ कि यह हालत ईश्वर करे ख़ुद-ब ख़ुद पैदा हो जावे। ज़रा इस का मज़ा लेकर तो देखें। मेरी समझ में इस के मुक़ाबले में हज़ारों सल्तनतें हेच हैं। अगर मैं इसकी व्याख्या करूँ, तो आप आश्चर्य करेंगे कि यह वह ख़ामोश हरकत है, जो शुरु में मथ मथाकर कायनात को ज़हूर में लाई। गोया इस तज़लज़ुल से हमारा वजूद हुआ। अब हम असल भंडार में अगर अपनी वापसी चाहते हैं तो इस चीज़ को अख़्तियार करके उसी रास्ते होकर जायें जिससे हम आये हैं। इसके बाद जो बेचैनी बढ़ी वह अपनी पैदा की हुई है, इस लिये कि हम असल से जो ताक़त अपने साथ लाये हैं उसके इस्तेमाल से हमने जो कुछ भी किया है, वह ज़ाहिर है। अब उसी को उलट देना है ताकि रास्ता सीधा मिल जाये। जब हम इस रास्ते पर पड़ जाते हैं तो वह असल तज़लज़ुल, जिसको मैंने बेचैनी के नाम से कहा है, उससे मिल-मिलाकर हम एक प्रकार से अपने में ताक़त महसूस करने लगते हैं, जो ख़ालिस है। यह चीज़ शब्द की झन्कार भी है जो कि ठोसता के साथ मिलने से पैदा होती है, मगर यह आवाज़ ख़ामोश कही जाती है। रास्ते के सिरे पर पड़ जाने से यह चीज़ खुलने लगती है। इस की पहचान भी यह है कि जहाँ शब्द का एहसास शुरु हो गया तो समझ लेना चाहिये कि रास्ते पर पड़ गये। अक्सर लोगों को इस रास्ते पर एक दम से भी डाला जाता है। ख़ैर यह तालीम-कुनिन्दा पर मुनहसिर है। जैसा वह मुनासिब समझे करे।

इस बेचैनी को ज़रा आगे बढ़ने पर सूफ़ी महात्माओं ने **दर्दे दिल** कहा है, यानी जब यह बेचैनी तड़प की शक्ल अख़्तियार कर ले।

> ''तमन्ना दर्दे-दिल की है तो कर सोहबत फ़क़ीरों की,
> नहीं मिलता है ये गौहर शहनशाही ख़ज़ीनों में ।।

मेरे इस सब कहने का निचोड़ यह है कि:-

दिले मन बाग़बाने इश्क़ व हैरानी गुलिस्तानश ।
अज़ल दरवाज़ाए बागो अबद हद्दे ख़याबानाश ।

(अर्थात्, मेरा हृदय उस के प्रेम और आश्चर्य के बाग़ का माली है । सृष्टि का आदि उस बाग़ का दरवाज़ा है, और सृष्टि का अन्त उस के वीराने की सीमा है ।)

अब या तो इंसान इस हालत में मुहब्बत करते-करते पहुँच जाये या हालत के लिये अपने आप को मालिक के सुपुर्द कर दे । आप यह सवाल ज़रूर करेंगे कि वह Practical exercise कौन सी हो सकती है ? इसके उत्तर में एक कहानी इस प्रकार है । एक बादशाह शिकार-गाह में मौजूद था । नमाज़ का वक़्त आया, मसलह बिछाया गया और वह नमाज़ पढ़ने लगा । हुस्ने इत्तफ़ाक़ से एक औरत उधर से निकली । वह शाही-मसलह रौंदती हुई वहाँ से चली गई । बादशाह को यह बात बड़ी नागवार हुई मगर चूंकि नीयत बाँध चुका था, जिसका तोड़ना मुनासिब न था, कुछ न कहा । नमाज़ से जब फ़ारिग हुआ तो वह औरत फिर वहाँ से गुज़री । बादशाह ने कहा "तू कैसी नादान औरत है कि तूने नमाज़ के वक़्त एक बादशाह का मसलह रौंद डाला और तुझे ख़तरे का ख़्याल पैदा न हुआ ?" उसने जवाब दिया, "कि मैं अपने यार से मिलने के लिये इस क़दर बेचैन थी कि मुझे यह ख़बर न हुई कि एक बादशाह का मसलह बिछा हुआ है और वह इस वक़्त नमाज़ में हैं । मेरा मुहब्बते मजाज़ी में जब यह हाल था तो ताज्जुब है कि तुझको यह खबर कैसे हो गई जब कि तू हक़ीक़त के लिये सर-ब-सजूद था ।"

ग़ौर फ़रमाइये, कितना अच्छा नतीजा इससे निकलता है । उस औरत की बेक़रारी, अगर किसी बादशाह को नसीब हो जाती तो उसकी भी हालत यही हो जाती कि सल्तनत के होते हुये वह उससे बेख़बर हो जाता । बेख़बरी से मेरा मतलब सिर्फ़ यह है कि लगाव उस तरफ़ न रहता और काम होता रहता । यह एक हालत है जो, जब संस्कार बनना बन्द हो जाते हैं, तब पैदा हो जाती है । वाक़ई तौर पर इस ख़िरमने-कायनात में सिर्फ़ मुहब्बत ही ऐसी चीज़ है जिससे सब कुछ हो सकता है और ईश्वर से मिलने का यही एक रास्ता है । जब बेक़रारी के साथ मुहब्बत का उरूज होता है, तो हर चीज़ ख़ुद ब ख़ुद जलकर ख़ाक होने लगती है और यही एक चीज़ है जिससे Self surrender हो सकता है । उसकी याद ऐसी होनी चाहिये कि फिर अपनी भी याद न रहे । यहाँ तक कि याद की भी याद बाक़ी न रहे ।

अब रहा यह सवाल कि बे-नक़ाब कैसे हों ? सहल नुस्ख़ा यह है कि यक़ीन और Faith हर ख़्याल के पर्दे को चाक कर देती है और जब यह चीज़ पूर्ण रूप में पहुँच जाती है । तब बेनक़ाबी की हालत पैदा होने लगती है । Devotion दरहक़ीक़त उसके बाद ही से शुरु होता है ।

मैंने मुख़्तसिरन यह तहरीर करा दिया हालांकि इसमें की एक एक चीज़ ऐसी है कि वरक़ के वरक़ रंगे जा सकते हैं ।

एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

कम सामान अधिक आराम

कम सामान, अधिक आराम - Travel Light - रेलवे विभाग हर यात्री को सलाह देता है । इससे साथ के दूसरे मुसाफ़िरों को बड़ी सहूलियत हो जाती है । यही बात ईश्वर साक्षात्कार के पथ पर चलने वाले साधकों पर भी लागू होती है । हम जानते हैं कि हमारे ऊपर संस्कार वग़ैरह के रूप में तमाम सामान का भार है । हम उसे लादे हुये, बोझ से दबे हुये साक्षात्कार के रास्ते पर बढ़ रहे हैं । अगर हमें अपनी यात्रा आसानी से करनी है तो यह ज़रूरी है कि हमें इससे छुटकारा मिले ।

यह दो तरह से हो सकता है । जैसे रेल में सफ़र करते समय हम अपना सारा भारी सामान रेल के गार्ड के सुपुर्द कर देते हैं उसी प्रकार हम अपने गुरु को सब भार दे दें और उस से बोझ से छुटकारा पायें । दूसरे शब्दों में यही आत्म समर्पण है । जब हमने सब कुछ गुरु को सौंप दिया तो हम उस सब बोझ से छूट गये जो हमारे रास्ते में बाधा देता है । दूसरा तरीक़ा सामान से छुटकारा पाने का यह है कि हम भोग के द्वारा अपना सामान थोड़ा-थोड़ा करके कम कर दें । लेकिन यह तरीक़ा बहुत मुश्किल और बहुत लम्बा है । कुछ भी हो, हमें इससे छुटकारा पाना है और हल्का और बिल्कुल हल्का हो जाना है ।

मैं आप सबका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूँ जिससे आप सब इसी तरह कोशिश करें । समय दोबारा नहीं आता । इसलिये अपने महान गुरु के शिष्य के नाते हमें इससे पूरा फ़ायदा उठाना चाहिये । मैं अपनी शुभ कामना तथा थोड़ी मदद् के अलावा, और क्या दे सकता हूँ । मेरा यह मतलब बिल्कुल नहीं कि अपना सारा दुनियावी सामान छोड़ दें, गृहस्थ जीवन से मुँह मोड़ लें बल्कि वे सारा काम महान् प्रभु का दिया हुआ कर्तव्य समझ कर करें । यही असली ज़िन्दगी है और चाहे सांसारिक हों या आध्यात्मिक-सभी कठिनाइयों का हल भी यही है ।

इसके लिये मैं सभी से यही उम्मीद करता हूँ कि वह अपनी पूरी कोशिश

करें । मैं आप को यह विश्वास दिलाता हूँ कि आप जो कुछ मेरे पार्थिव शरीर के रहते हुये आध्यात्म क्षेत्र में पा लेंगे, उस का महत्व तब और रहेगा जब मैं इस संसार से चला जाऊँगा । लेकिन अगर आप इस समय उस की उपेक्षा कर दें और सोचें कि मेरे चले जाने के बाद भी आप प्रेम बढ़ाकर उसे बढ़ा लेंगे-तो मैं आप को सावधान कर दूँ कि यह टेढ़ी खीर होगी । एक पतंगा जलती हुई शमा पर तो अपने को जला सकता है लेकिन बुझी हुई बत्ती पर अपने को जला सकना बिल्कुल असम्भव सा लगता है । इसमें अपवाद हो सकते हैं लेकिन वह बिल्कुल गिने-चुने एकाध ही होंगे । इस का तरीक़ा यह हो सकता है कि हम या तो उस हालत पर पहुँच जायें जब कि बुझी शमा पर भी जलना सम्भव हो जाये या वह ऊँची हालत पालें जब कि जलने का सवाल ही न उठे । लेकिन यह मालिक की कृपा और साधक की ज़ोरदार कोशिश पर निर्भर है ।

मेरा दिल अपने साथियों के लिये गहरे प्यार से भरा हुआ है उनके लिये मैं जो भी ख़िदमत करूँ उससे मेरा दिल नहीं भरता । मेरी कितनी व्याकुल्ता है कि सब लोग मेरी हालत तक पहुँच जायें क्योंकि उनको यहाँ पहुँचा देना मेरी ताक़त में है । जब मैं इस दुनिया से चला जाऊँगा तब क्या होगा ? मैं ठीक कह नहीं सकता । मेरे महान गुरु देव ने मुझे जो दौलत दे दी है वह बड़े से बड़े शहनशाह के पास भी नहीं हो सकती । दुनिया की कोई भी चीज़ इस की बराबरी नहीं कर सकती । मैं यह बिल्कुल नहीं चाहता कि मैं इसे अपने साथ लेता जाऊँ बल्कि इसे किसी को दे जाऊँ जैसा कि हमारे पूज्य गुरु देव ने किया था । लेकिन अभी तक मुझे इसके योग्य कोई नहीं मिला और न कोई ऐसी कोशिश करता हुआ मिला , जिस से उस के अन्दर ऐसी काब्लियत पैदा हो जाये । कुछ लोगों को ताज्जुब होगा कि मैं ख़ुद उन के अन्दर इसकी योग्यता क्यों नहीं पैदा करता । इस का सिर्फ़ यही जवाब हो सकता है कि कोई ऐसा होना नहीं चाहता । अब मैं किसी के ऊपर यदि इसे डाल भी दूँ और वह इसके योग्य न हो तो वह सिद्धान्त के ख़िलाफ़ होगा । साथ ही साथ वह इस को पहचान भी नहीं पायेगा । इसके लिये जो जिस क्षेत्र से गुज़र रहा हो उस की पूरी सैर ज़रूरी है । इस के बिना इस में जो मज़े की हालतें आती हैं उनका पूरा अनुभव उसे नहीं होगा । ऐसी हालत में दूसरों को उस रास्ते पर कभी नहीं ले चल सकेगा । इसी वजह से ऊँची हालतें एक साथ नहीं खुलतीं । यही मेरी कुछ मजबूरियाँ हैं नहीं तो इस तरीक़े से ज़्यादा आसान रास्ता मेरे लिये और कुछ नहीं था । जहाँ तक मेरे उन साथियों का सवाल है जिनका आख़िरी वक़्त आ जाता है मैं

इसे अपना फ़र्ज़ समझता हूँ कि उनको उस हालत पर पहुँचा दूँ जहाँ से उन का दुनिया में लौटना नामुमकिन हो जाता है। सस्कारों को आनन फ़ानन में ख़त्म कर देना प्रकृति के कानून के खिलाफ़ है। साथ ही न अब मेरी तन्दुरुस्ती ऐसी है और न ताक़त है कि उन के संस्कार खुद भोग लूँ जैसा कि हमारे पूज्य गुरु देव अक्सर किया करते थे।

□□□

समर्थ सद्‌गुरु सन्देश

जिसने अपना शीशये दिल साफ़ कर लिया, उस को उस खटक का एहसास होता है जो ईश्वरी मंडल में होती है । ऐसा ही शख़्स अभ्यासी के दिल को साफ़ करके उसमें रोशनी डाल सकता है । जो शख़्स गुरु बन कर मैदान में तालीम देने आता है, तो इस का मतलब यह हुआ कि वह ईश्वर का रुतबा अख़्तियार करना चाहता है, क्योंकि ईश्वर ही सब का गुरु है । ज़ाहिर है कि एक मुल्क में दो बादशाह नहीं रह सकते । इस का नतीजा यह है कि जो शख़्श गुरु बन का तालीम देता है, वह सही मायनों में फ़ायदा नहीं पहुँचा सकता । इसलिये लाज़िम है कि वह अपने को एक तुच्छ भाई समझे, और ऐसा ही व्यवहार अमल में लावे । इस तरह की बिरादराना ख़िदमत के लिये किसी जद्दोजहद की दरकार नहीं, बल्कि इस पाये पर पहुँच कर मुअल्लिम से तालीम की ख़िदमात ख़ुद बख़ुद रवाँ होती हैं, जैसे कि सूरज से रोशनी और गर्मी ।

मुझ को अगर एक रुहानी ख़ादिम समझा जाये तो निहायत मुनासिब हो । मैं रुहानी ख़िदमत तो करता ही हूँ जिस्मानी भी करने में मुझे कोई आर नहीं है । मेरे गुरु महाराज सब को अपना भाई समझते थे । किसी के चेला होने का ख़्याल उनको उम्र भर कभी पैदा ही नहीं हुआ । अब इस माऽमले में पहले ज़माने का तरीक़ा बदलना चाहिये । पहले ज़माने के गुरु साहबान चेलों से ख़िदमत लेते थे, हाथ पैर दबवाते थे, और पैर छुआते थे । इसलिये कि उनका संस्कार ईश्वर मार्ग के लिये बन जावे । हाथ दबवाने और पैर छुआने में उन के विश्वास में, वह शक्ति जो गुरु में मौजूद थी, उन के जिस्मों में पैवस्त हो जाती थी, और उन के ख़्याल का अटकाव भी ख़िदमत की तरफ़ रहता था, यानी अभ्यासी का ख़्याल गुरु की तरफ़ राग़िब रहता था, जिससे अभ्यासी की पवित्रता बढ़ती थी । अब ज़माना की तब्दीली से यह तरीक़ा बदल जाना चाहिंये, यानी अगर यही ख़िदमत तालीम देने वाला अभ्यासी की करे, तो भी अभ्यासी को वही फ़ायदा होगा जो गुरु की ख़िदमत से मिलता था ।

रुहानी तरक़्क़ी में एक हालत ऐसी आती है कि उस में रुहानी शक्ति ख़ुद ब ख़ुद फैलने लग जाती है और उस का फैलाव यहाँ तक हो जाता है कि उस की यह ताक़त कुल वायुमंडल और लोकों में छा जाती है । अगर कुदरतन यह होता है कि हर चीज़ चार्ज हो जाती है और यह कैफ़ियत तब होती है जब कुदरत किसी शख़्स को चुन लेती है और उस की हैसियत अवतारी हो जाती है । उस को अवश्यावतार कह लें, यानी आवश्यकता के लिये ऐसे व्यक्ति को बना लिया जाता है । यह चिन्ह जिस समय मिलें कह लेना चाहिये कि कुदरत उसमें होकर अपना काम कर रही है । ऐसा शख़्स बिना तालीम दिये रह नहीं सकता, और असल में वही मुकम्मल तालीम कुनिन्दा है । यद्यपि ऐसा शख़्स हज़ारो वर्षों में पैदा होता है फिर भी उस की कृपा से यह असम्भव नहीं कि किसी वक़्त में पैदा कर दे । ऐसा आदमी मिल जावे तो तलाश करना चाहिये । और महात्माओं का फैलाव तो ज़रूर होता है, किन्तु जब असल ख़्याल ईश्वरीय तत्व में शामिल हो जाता है, तब यह बड़ी हालत पैदा होती है । इससे जितने नीचे दर्जे पर ख़्याल का लय होता है उतने ही नीचे दर्जे पर फैलाव होता है । अगर कोई ऐसा अवतारी मिल जाता है और अगर कोई अभ्यासी उस के फैलाव और विस्तार में अपने को लय कर डाले, तो उसी हद तक उसका भी फैलाव हो जाता है । जहाँ से कोशिश होती है, मैं वहाँ जाने को मजबूर हो जाता हूँ । मेरे यहाँ हर शख़्स का स्वागत है । हम आप हाथ पैर पटका करते हैं, होता वही है जो वह चाहता है ।

"बे रज़ा-ए-तो मयस्सर
नेस्त दीदारे शुमा ।।

(बिना आप की मर्ज़ी के आप का दर्शन प्राप्त नहीं हो सकता)"

यह सवाल है काफ़ी टेढ़ा और अहम कि कोई हज़रत क़िब्ला लाल जी साहब से सीधा सम्पर्क कर सकता है या नहीं । मैं तो उनका हल्क़ा बगोश हूँ और आप सब का हाथ उन्हीं के हाथ में देता हूँ । लिहाज़ा जब लोग उनसे मेरी बहबूदी वग़ैरह के लिये प्रार्थनायें करते हैं तो मुझे ठीक लगना लाज़मी है । मेरी बेहतरी और मेरा काम ख़्वाह जिसमानी हो या दिमाग़ी वगैरः सब उन्हीं पर मुनहसिर है । अभ्यासी जो कुछ भी करता है, आख़िर में उसी को फ़ायदा या नुक़सान पहुँचता है । उसमें अपने फ़ायदा नुक़सान की समझ की कमी को मैं अपनी तालीम की ख़ामी मान लेता हूँ । मुमकिन है इस से भी लोगों को फ़ायदा पहुँच जाता हो । रुहानियत में तरक़्क़ी का ज़रिया सब से

ज़्यादा यकसूयी है । मैंने तो जो कुछ पाया अपने समर्थ गुरु महाराज से ही हासिल किया । सिर्फ़ ग़लितयाँ ख़ुद-कर्दा कहीं, बल्कि अमूमन वह भी उन्हीं से मंसूब समझीं । मेरे लिये यह उन्हीं का मर्तबा और मक़दूर था, और किसी का नहीं । अतः मैंने सिर्फ़ उन्हीं से मतलब रखा, और उन्हें देखा तो आँखें फोड़ लीं कि और कुछ कहीं देखने की गुंजायश ही नहीं रह गई ।

हरकि मा करदेम बा खुद । हेच ना बीना न कर्द ॥
दरमियाने ख़ाना गुम । कर देम साहब ख़ाना रा ॥

(हमने अपने साथ जो किया वह तो किसी अंधे ने भी अपने प्रति नहीं किया । हमने तो घर के बीच में ही घर के मालिक को खो दिया ।) और तब उस मालिक ने ख़ूब ख़ुश होकर कहा ।

"सोख़्तन बर शमअ कुश्ता कारे हर परवाना नेस्त । (बुझी हुई मोमबत्ती पर जल जाना हर पतंगे के बस की बात नहीं ।)"

रुहानी तालीम और अभ्यास का बस यही अहम्‌तरीन नुक्ता है ।

❑❑❑

मेरी पद्धति और मेरा कार्य

मेरा तजुर्बा वसीय नहीं है। मैं इतना ही जानता हूँ कि कुछ नहीं जानता हूँ। मैंने अपनी ही किताब देखी जिसमें इल्म ग़ायब था। मैं अन्धा होकर चला। मुझ को यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कर रहा हूँ। न यह मालूम था कि क्या रास्ता अख़्तियार किया है। न मुझे यह मालूम था कि मेरा मक़सद वाक़ई वहाँ तक है जहाँ तक मैं आप सब से कहता हूँ कि होना चाहिये। मेरी निगाह सिवाय उस पाक शख़्सियत (पवित्र व्यक्तित्व) के जिसका मैं दिलदादा हूँ किसी तरफ़ नहीं रही। मैं हमा:तन उसी की तरफ़ हो रहा था और कुछ ग़रज़ नहीं रखी। अब भी मेरा वही हाल है। फ़र्क़ अब यह है कि अब यह भी तमीज़ नहीं रही।

अंधे को कुछ नहीं सूझता और जब मैं ऐसा बना तो वाक़ई मुझ को कुछ न मालूम पड़ता था। महान भक्त सूरदास ने अपनी आँख फोड़ लीं थीं जिससे वह, वे बातें न देखें जो देखने के लायक़ नहीं हैं। और मैंने क्या किया कि अपनी बसारत (दृष्टि शक्ति) को उसी तरफ़ फिरा दिया था। ऐसी हालत में दुनिया के रूप का वज़न मेरे दिल पर नहीं रहा।

हम इन्सान वहाँ हैं जहाँ से हमको ख़ुद हमारी भी कुछ ख़बर नहीं आती। दूसरे शब्दों में वह स्थिरता अथवा निष्क्रियता (Inactiveness) हम में कुदरती तौर पर मौजूद है, जहाँ समासम का एक भाव कह सकते हैं। हर चीज़ की पैदायश इस के बाद हुई है। हम इस मंज़िल पर छोटाई (विनम्रता) से पहुँच सकते हैं और छोटाई भी ऐसी कि जिस की हमको भी ख़बर न हो। हम को बड़ाई पर पहुँचना है मगर बड़ाई यकसानियत को कहते हैं। और वह भी कैसी कि जिसकी हमको ख़बर न हो। अगर हम अपने को बड़ा समझते हैं तो यह ख़्याल सिद्देराह (मार्ग की बाधा) हो जाता है। और हम किधर के भी नहीं रहते हैं। किसी लाइन में किसी मुक़ाम पर और किसी समय अपने को किसी से हरगिज़ बड़ा नहीं समझना चाहिये। ज़रा ग़ौर कीजिये क्या ख़ूब कहा है ''वह ऐब नहीं जो बे ऐब न हो'' शायद इस का मतलब

निम्नलिखित पद्य से कुछ निकल सके :

"गहे शादम व गहे ग़मग़ीन, अज़ हाले ख़ुदम ग़ाफ़िल कि मी गिरियम व मी ख़न्दम चूँ तिफ़्ल अन्दर ब ख़्वाब !" (अर्थात् मैं कभी प्रसन्न हूँ और कभी दुखी, अपनी हालत से ग़ाफ़िल रोता हूँ और हंसता हूँ, जैसे कि स्वप्न देख रहा कोई बच्चा) ।

दूसरों की तालीम देने के लिये आवश्यक, वास्तविक स्थिति पहुँचे बिना दूसरों को ट्रेनिंग Training (प्रशिक्षण) देना शुरु करने का परिणाम प्रशिक्षक का पतन हो सकता है । असल इजाज़त उस वक़्त दी जाती है जबकि इंसान के दिल पर यह वज़न न आये कि मैं तालीम कर रहा हूँ । और यह हालत अपना आपा मिटा देने पर होती है । ऐसे व्यक्ति को अलावा ईश्वर के हुक्म बजा लाने के और काम नहीं होता । उसे अच्छाई बुराई से मतलब नहीं, अपने और ग़ैर से ताल्लुक नहीं । उसके लिये आज्ञा जो कुछ है सो है ।

मालिक का काम कभी नहीं रुक सकता । यह रुहानी आन्दोलन जल्दी ही पूरे कमाल पर पहुँचेगा । रुहानी तरक़्क़ी के किसी भी पाये पर संतुष्ट नहीं होना चाहिये । काफ़ी (पर्याप्त) का विचार क़तई छोड़ देना चाहिये । हमारे समर्थ सद्गुरु ने कहा था कि वे अपने जीवन में कभी संतुष्ट नहीं हुये । और उस के बाद तम की उच्चतम दशा में आगे की लगातार तैराकी है । सच बात तो यह है कि समुद्र का लम्बा, चौड़ा विस्तार पार करना किसी के लिये भी संभव नहीं हो पाया । जब उच्चतम मुक्त आत्मा की यह स्थिति है तो कमतर लोगों के लिये क्या कहा जाये । "बिसियार सफ़र बायद ता पुख़्ता शवद स्ख़ामी । (अर्थात् सफ़र लम्बा होना चाहिये, जिससे कि कच्चापन पक जाये) ।"

अन्दरूनी ताक़त से सभी दोष दूर हो जाते हैं । मुमकिन नहीं कि इन्सान दोष दूर करना चाहे और वह दूर न हो सके। पुरानी कहावत है: हिम्मते मर्दां मददे ख़ुदा" (साहसी मनुष्य की परमात्मा सहायता करता है) । मुझ को अपने सद्गुरु की सोहबत लगभग एक दर्जन मरतबे से अधिक नसीब न हुई किन्तु मुझे कभी यह ख़्याल पैदा न हुआ कि मैं उनसे दूर हूँ । हमेशा अपने आप को उन से नज़दीक ही समझा और डरता रहा कि कहीं ऐसी कोई हरकत न हो जाये जो आपको नापसन्द हो । यह ख़्याल यक़ीन के पाये पर होना चाहिये कि मालिक हर वक़्त साथ मौजूद है । यह वह हालत, वह बातें हैं जो आइंदा ज़िंदगी बनाने में मददगार होती हैं । एक तरीक़ा मैं आपको

बताता हूँ कि जब कभी कोई बात ऐसी पैदा हो जावे तो जल्द से जल्द वह मुझ को मंसूब कर दी जावे यानी यह समझ लिया जावे कि वह मेरी ग़ल्ती व दोष था । नुस्ख़ा आसान है मगर मुअस्सर (प्रभावशाली) । जब मेरे एक अभ्यासी भाई ने मेरी पद्धति पर आक्षेप किया कि यह मालिक के प्रति बेहद बदतमीज़ी और अनादर की बात होगी तो मैंने उत्तर दिया था कि यह निसंदेह ऐसा ही होगा । यदि मैं अपने सद्‌गुणों और अच्छी बातों को अपना समझूँ और मालिक से अलग अपने से मंसूब करूँ या फिर इस ऐसी हालत में भी जब कि मालिक पूर्ण न हो ।

हमारा सबका फ़र्ज़ है कि जिस तरह हो सके एक दूसरे की मदद करें । ''बनी आदम यकजाँ यक दीगरद'' (मनुष्य एक दूसरे के अंग है, वे एक दूसरे पर निर्भर होते हैं) । मैं अगर ज़बान अथवा अन्य स्थूल रूप में नहीं तो हृदय से अवश्य सभी के कल्याण की प्रार्थना करता हूँ । एक रुहानी हालत होती है जिसमें कि तबियत अपने आप परमात्मा की सृष्टि के कल्याण और भलाई के लिये राग़िब (उद्दिष्ट) रहती है। दुआ वह ठीक है कि दुआ करने वाले को यह पता न चले कि मैं दुआ कर रहा हूँ और दुआ होती रहे । पता चलने में यह डर है कि दुआगो में अहमियत आ जावे । अगर कहीं दुआ के अनुसार काम हो गया तो दुआगो अपने को बरगुज़ीदा बंदा (विशिष्ट भक्त) समझने लगता है । यद्यपि इसमें भी हर्ज नहीं, नियत नेक हो । मूलतः सब कहीं, हृदय का महत्व होता है ।

अब अपने से ऊपर उठने की आवश्यकता है । ज़रा लौ लगाकर तो देखिये यह है क्या चीज़ । अफ़सोस है कि यह चीज़ हिन्दुओं के घर की है और वह ख़ुद ही नहीं समझते । वजह यह है कि हमें उसके समझने की फ़ुर्सत ही नहीं, गोया कि मुसलमानों के विचार के अनुसार मुहम्मदसाहब क़यामत (महाप्रलय) के दिन क़ौम की सिफ़ारिश करके जन्नत दिलवा देंगे, हालांकि यह भी पता नहीं कि क़यामत के बाद जन्नत (स्वर्ग) आदि रहेगी भी या नहीं ।

अध्यात्म के क्षेत्र में अनेकता या भिन्नता विष होती है । जब हम अपने को बख़्याल ज़ात (बड़ा) समझते हैं तो मुहब्बत की परवाज़गी नहीं होती । अगर हम अपने को तुच्छ समझ लें तो हमारा जी उसकी ख़िदमत करना चाहेगा, यह अख़लाक़ है । एक फ़क़ीर ने कहा है कि अगर मैं अपने को किसी नीच से या अधम से ऊँचा समझूँ तो मैं अपने दर्जे से गिर जाऊँगा । हम लोग अब सिर्फ़ जाति से इज़्ज़त और ऊँचाई समझने लगे हैं । सभी

जातियां एक संदूक़ के ख़ाने हैं । वक़्ते ज़रूरत सन्दूक़ ही मंगवाया जाता है न कि उस के ख़ाने । यह सब ख़ाने एक ही कारीगर के बनाये हुये हैं । इन्तज़ामन ख़ाने बना दिये गये हैं । अगर आप संदूक़ खोलेंगे तो सब ख़ाने एक दूसरे में मिले हुये पावेंगे और उन सब की बुनियाद लकड़ी होगी या लोहा होगी । क्या अच्छा कहा है :

"नीच नीच सब तर गये सन्त चरण लवलीन ।
जाति के अभिमान से बूड़े सकल कुलीन ।"

जाति की व्यवस्था की जड़ पर प्रकृति की ओर से कुल्हाड़ी चल चुकी है, यक़ीन करें कि इसे समाप्त होना है और कालान्तर में ऐसा ही होगा ।

अपनी दृष्टि आन्तरिक दृश्य की ओर घुमाओ और यह जानो कि तुम्हारे सामने फैली हुई दुनिया मेरी है जिससे कि तुम मुक्त हो सको । मैंने अपना स्वर्ग दूसरे के लिये छोड़ रखा है और अपने को दूसरों की कठिनाइयों और दुखों का निशाना बनाया है । मुझे अपनी मुक्ति की भी चिन्ता नहीं । मेरे पास दो चादरें हैं एक सफ़ेद दूसरी काली । ऊपर कही हुई बाद वाली अर्थात् काली चादर दूसरों की कठिनाइयों और दुखों से बुनी हुई है जिनके धब्बों से मैं प्रशिक्षक होने के नाते बच नहीं सकता । अपने दुख दर्द की ग़िलाफ़ को दूर कीजिये जिससे मैं उन्हें भोग सकूँ और मुझे उन्हें भोगने दीजिये । मेरी काली चादर पर उनकी बृद्धि होती जायेगी और आप की चादर केवल सफ़ेद ही रहेगी ।

मालिक का काम हमेशा बिन रुके चलता रहे । मेरे प्रिय जन उसमें मालिक की पद्धति का अनुसरण करते हुये भागीदार बनें । यही मुक्ति और उसके आगे, और उसके आगे का सही और एक मात्र रास्ता है ।

❑❑❑

अध्यात्म के स्तर

हम जब किसी काम को अपने से निस्बत (सम्बंध) दे लेते हैं तो उस की कामयाबी और नाकामयाबी पर हमको ख़ुशी और रंज होता है, बस यही एक चक्कर है जो हमको बंधन में रखता है। इस चक्कर से छुटकारा मिलना ही रास्ता खुल जाना है। अब यह खुलता कैसे है ? जब हम किसी बड़ी ताक़त से सम्बद्ध हो जाते हैं, अगर ईश्वर ने यह वक़्त दिखा दिया और कहीं यह हालत पैदा हो गई तो फिर हम-कनार (समीप) भी जल्द होने लगते हैं और मंजिलें पार होते देर नहीं लगती। रोना तो इस बात का है कि कोई इस बात की कोशिश नहीं करता कि कम से कम हम बा-निस्बत (सम्बंधित) ही हो जायें, अगर फ़ना होने का हम अपने आप को मौक़ा नहीं देते। निस्बत पैदा होने की तरकीब आत्म समर्पण (Self surrender) है यद्यपि यह चीज़ मुश्किल ज़रुर है ख़ास कर उन लोगों के लिये जिन के दिल में कोई भारी बोझ ऐसा मौजूद है कि ऊपर उठने का इस मामले में मौक़ा नहीं देता। फिर भी उतना ही करें जितना कि अच्छा विद्यार्थी (तिफ़्ले मकतब) अपने उस्ताद के साथ करता है। सब से पहली चीज़ या पहली सीढ़ी-आत्म समर्पण (Self Surrender) का अनुशासन (Discipline) है, अगर ख़्याली Discipline हम पहले क़दम पर नहीं कर सकते तो कम से कम जिसमानी Discipline तो हमको शुरु ही कर देना चाहिये। फिर यह हो सकता है अगर उस्ताद की क़ाबलियत और इस्तेदाद दिल पर अंकित है तो ज़रूरी है कि ख़्याली इज्ज़ (दीनता) शुरु हो जायेगा, बशर्ते कि शागिर्द वाक़ई तालीम हासिल करना चाहता है। इन सीढ़ियों पर जो कि प्रारम्भिक हैं अगर कहीं किसी ने क़दम रख दिया तो तबियत अगली सीढ़ी ख़ुद ब ख़ुद टटोल लेगी। हम बस तबियत से अपने कार्य की प्राप्ति के लिये रुजू हो जायें। फिर क्या है, मोहब्बत का भी आराम हो जाता है और उस वक़्त ज़्यादा जबकि मुअल्लिम (सिखाने वाला) की क़ाबलियत पर आमवत (दिलदादा) हो जाते हैं। मगर यहाँ अपने दायरे में अब तक मेरी यह समझ में नहीं आया कि वाक़ई लोग अपने मक़सद पर पहुँचना चाहते हैं या नहीं। अगर पहुँचना ही चाहते हैं

तो यह सब बातें ख़ुद ब ख़ुद पैदा हो गई होतीं । शौक़ लाज़मी है और शौक़ उस वक़्त पैदा होता है जबकि उसको मक़्सद से जिस पर कि उसको पहुँचना है, लगाव होता है । यह भी है कि चन्द लोग थोड़ी देर के लिये चित्त शान्त करने के लिये मेरे पास बैठ जाते हैं, और यह भी ग़नीमत है कि मैं अपने भाई को कम से कम थोड़ी ही देर के लिये आराम दे पाता हूँ । मगर भाई सिर्फ़ इतनी ही ख़ुशी जो कि अभ्यासी के दिल में पैदा होती है काफ़ी नहीं है । मगर होता नहीं है । तजुर्बा गवाह है, कोई बिरले ही ऐसे मिलेंगे कि जो अज़ राहे दोस्ताना व मुशफ़िक़ाना (प्रेमपूर्वक) मुझ से ही हम किनार होने के लिये तैयार हों, ईश्वर तो बहुत बड़ी चीज़ है । और भाई मुझसे जब कोई मोहब्बत करता है तो मेरी तबियत बड़ी तर व ताज़ा हो जाती है गोया ख़ुश्क चीज़ में तरावट आ जाती है । तो भाई इतना ही मक़सद किसी का क्यों होने लगा जब कि उसके मोहब्बत करने के लिये बड़ी से बड़ी चीज़ें मौजूद हैं । हमें तो भाई वह पूछेगा जो सब कुछ खो चुका हो । और भाई, कुछ अजीब मज़ाक़ है और अजब शौक़ है कि जब मैं अपने आप को खो चुका तब मैं यह चाहता हूँ कि मेरी कोई खोज करे । तो मैं समझता हूँ कि कोई अक़्लमन्द आदमी खोये हुये की खोज न करेगा, और फिर कैसा खोया हुआ जिसका पता तक न रहा । मैं समझता हूँ कि मेरा यह शौक़ इसीलिये दूसरों में जज़्बा नहीं पैदा करता, इसलिये कि खोये हुये का शौक़ भी खोया हुआ होगा । जब यह बात है तो उसमें कौन सी ऐसी चीज़ रह जाती है कि जो दूसरे को इस खोई हुई खोज की खोज करा सके ।

जब यह ख़त मैं लिखा चुका तो दो तीन बातें जो ख़त लिखाने से पहले मेरे ख़्याल में मौजूद थीं इस वक़्त याद आ गईं । रुहानियत (आध्यात्मिकता) सिखाने निकले हैं । किनको ? जो ख़ुद रुहानी आदमी हैं । Practical view से अगर देखता हूँ तो हर शख़्स रुहानियत में मिलता है, चाहे वह किसी प्रकार का हो । देखिये मेरे ख़्याल से रुहानियत की तीन क़िस्में हो सकती हैं :-

१. अव्वल Pure spiritualism शुद्ध आध्यत्मिकता ।
२. दूसरी Characterless spiritualism चरित्रहीन आध्यत्मिकता ।
३. तीसरी Idiot type of spiritualism बुद्धिहीन आध्यत्मिकता ।

नं. १ की बाबत मुझे कुछ कहना नहीं है, हमारे क़िब्ला लाला जी साहब की तालीम ही पुकार रही है कि इसके दिलदादा बनो और वह यही चीज़ हम सब को दे रहे हैं ।

नं.२ में वह लोग आते हैं जो कि चोरी, डकैती या इसी तरह के काम के लिये जब जाते हैं, तो अक्सर यह प्रार्थना करते हैं कि उनके काम में कामयाबी हो और मुमकिन है कि कुछ मानता मानते हों, और चन्द लोग उनमें ऐसे भी होंगे कि जो अपनी कामयाबी में सत्यनारायण की कथा भी कहलाते हों या किसी देवी या देवता की मुख़्तलिफ़ तरीक़े से आराधना करते हों । तो भाई, हैं यह भी Spiritualist, इसलिये कि वह एक बड़ी ताक़त की बात कर लेते हैं ।

नं.३, की तादाद बहुत होगी । मेरी समझ से उनके नाम और तारीफ़ अगर की जाये तो हिन्दुस्तान में इस वक़्त जितना काग़ज़ कि मौजूद है वह भी उन की तारीफ़ लिखने में काफ़ी न होगा । इसमें वह सब लोग आ जाते हैं जो मस्तक घिसना जानते हैं या ठोस चीज़ों को अपनी पूजा में रखकर दिल बहला लेते हैं । तो मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान में सब के सब व्यक्ति क़रीब-क़रीब Spiritualist मिलेंगें । यह मुमकिन है कि मेरे सत्संगियों में कुछ ऐसे आदमी मिल जावें कि इन तीनों क़िस्मों में से किसी क़िस्म में आते न हों । वैसे एक चौथी क़िस्म भी पैदा हो सकती है मगर उसको मैं यों लिखना नहीं चाहता कि मुमकिन है उस की सिर्फ़ एक ही मिसाल हो ।

यह बातें मैंने ऊपर की, विद्वानों के लिये लिखी हैं । सम्भवतः वह इस को बहुत पसन्द करेंगे । हालांकि यह कोई नई चीज़ नहीं ।

एक अभ्यासी के पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

अभ्यासी का कर्तव्य

जन्म अष्टमी २६ अगस्त को है । और यह एक ऐसा दिन है कि हमें ईश्वर के ध्यान में दिन बिताना चाहिये । मिशन में इस दिन व्रत रखना आवश्यक है । अकसर निकट रहने वाले तो हमारे यहाँ इस दिवस पर आ जाते हैं, और जो नहीं आ पाते तो घर ही पर याद करते हैं । इस ग़रीब का दरवाज़ा सदा के लिये खुला हुआ है । जिस की इच्छा हो सेवा ले सकता है । सेवक को सेवकाई से मतलब है, और यह कि ईश्वर की बार-बार याद दिलाता रहे । यह उन के ऊपर है, जिनकी वह सेवा कर रहा है, कि वे अपनी विचार धारा ईश्वर की तरफ़ लगायें या न लगायें । अगर लगाते हैं तो हर रोज़ उनको नई जीवनी मिलती रहेगी । और उस हालत में उनको यह विश्वास भी हो जावेगा कि उन की सेवा ठीक हो रही है । और अगर नहीं लगता है तो उनके यह समझ में तो नहीं आता कि उन की विचार की धार ईश्वर की तरफ़ नहीं लगी बल्कि यह समझते हैं कि सेवक सेवकाई ठीक नहीं कर रहा है । और यह अधिकतम ऐसे लोग कहते हैं कि जो अपने आप को देखते हैं, और अपनी ही तरफ़ रहते हैं । और ईश्वर की तरफ़ तबियत को नहीं फेरते । अगर हमारी तबियत ''मालिक'' की तरफ़ फिर जावे, और अपनी ओर से हट जावे, तो फिर बताइये वह क्या चीज़ है जो हमारी तरफ़ नहीं आ रही है ।

अब दूसरी बात पर आता हूँ । ''सेवक'' सेवक ही रहेगा,और ''मालिक'' मालिक ही । और वह, ईश्वर जिसको अपनी ओर आकर्षित कर ले, वही उस तरफ़ पहुँच जाता है, और उसकी तवज्जह (निगाह) तभी हमारी तरफ़ हो सकती है, जब कि हम उसका हक़ छीनने की चेष्टा न करें । बल्कि हम यह देखते रहें कि हमारा धर्म और कर्तव्य क्या है ? और उसी का पालन करते रहें । और यही चीज़ हमें दुनियादारी के कामों में भी करनी चाहिये । और आपस में यह नहीं देखना चाहिये कि दूसरा व्यक्ति हमारे साथ अपना कर्तव्य अदा कर रहा है या नहीं । बल्कि हमको अपना कर्तव्य उस के साथ अदा करना चाहिये । यह चीज़ अगर हम में पैदा हो जाये, जिस के लिये

दुआ करनी चाहिये, तो फिर किसी से शिकायत नहीं रहती । हम को शिकायत तो तब होनी चाहिये कि जब हम अपना कर्तव्य दूसरों के साथ अदा न करें । कृष्ण भगवान ने गीता में कहा है ।

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः'

(Better one's own Duty though destitute of merit) कितनी अच्छी बात हो अगर हम अपनी ऐसी आदत बना लें कि दूसरों के ताने और ख़फ़गी (नाराज़गी) को यह समझ लें कि यह क़सूर हमारा ही है, तो तबियत को कितनी तसल्ली मिलेगी, क्योंकि ऐसी हालत में आप उस के शब्दों को गृहण नहीं करते, और उसकी चीज़ उसी के पास रह जाती है, जो उसकी ख़ुद सज़ा है । इसे कोई करके तो देखे कि तबियत को कितना चैन मिलता है ।

एक बात ज़रूरी कहना और रह जाती है, वह यह कि अभ्यासी अक्सर कहते हैं कि हमें कुछ मालूम ही नहीं होता । मैं कहता हूँ कि अपनी सामर्थ्य भर सब को मालूम होता है । अपने चित्त पर ग़ौर करके देखें, बहुत सी अवस्थायें ऐसी आती हैं कि जिन के व्यक्त करने के लिये शब्दों की ज़रूरत होती है । और शब्द हमारे पास तभी हो सकते हैं, जब कि हमने ख़ूब पढ़ा हो और शब्दावली बढ़ गई हो । हर शब्द में कुछ न कुछ अन्तर होता है । जैसी चीज़ सामने आवे वैसा ही शब्द उसके लिये होना चाहिये । मिसाल के तौर पर मैं लिखता हूँ कि बाग़ (Garden) के लिये फ़ारसी भाषा में दस शब्द हैं जो मुझे मालूम हैं । और हर एक में अन्तर है । जैसा बाग़ हम देखते हैं उसके लिये वैसा ही शब्द होना चाहिये । दूसरे यह कि अनुभूति या अहसास उसी वक़्त अच्छा खुलता है जबकि हम अपने आप को उस तरफ़ लगाये रखें, और साथ ही ईश्वर का भी ध्यान रहे । एक बात यह भी है कि इसको आप मेरी ख़ता (दोष) समझें कि मैं इतनी सूक्ष्म गति की तवज्जह देता हूँ कि जो बहुत दिनों अभ्यास करने के बाद देने के लायक़ है । मेरा मतलब यह होता है कि जल्दी से काम बनता चले । दुख यह है कि इस का नतीजा यह होता है लोग नाक़ाबिल समझने लगते हैं ।

हम जब ईश्वर मार्ग पर चलते हैं तो हमारी हालतें ज़रूर बदलती हैं, अगर आज शान्ति है, तो उसकी सूक्ष्म गति कल आवेगी । और कभी सूक्ष्म होती है, कभी उससे ज़रा गहरी सूक्ष्मता होती है । जब सूक्ष्मता में Matter या प्रकृति का वेग हो जाता है, तब अभ्यासी बहुत ख़ुश होता है । और उस की अनुभूति में भी यह चीज़ आती है, और वह अपनी हालत अच्छी

समझता है । जब ज़्यादा सूक्ष्म हालत होती है और समझ में नहीं आती तो वह समझ लेते हैं कि हमारा सिखाने वाला मदद नहीं कर रहा है । हालांकि इस गति में ही आना है । अचम्भा होता है कि हलुवा खिलाने से लोग नाख़ुश हों और चने चबाने से खुश हों । सहज मार्ग की तालीम में मैंने अक्सर कहा है कि मैं असल रूप में देने से मजबूर हूँ, इसलिये कि उसमें अशान्ति की अधिकता रहेगी । इसलिये कि गड़े दबे संस्कार सब सतह पर खींच लाना होंगे । और ऐसी हालत में लोग कहेंगे कि इस से तो हम बिना पूजा के अच्छे थे ।

अब सौ बात की एक बात यह है कि अभ्यासी शान्ति की खोज में रहते हैं, ईश्वर की खोज में नहीं रहते, इसलिये उन्हें शिकायत रहती है । यह क्यों है ? अपनापन और अपने को ख़ुश करने के लिये अपना स्वार्थ सामने रहता है, और उतनी देर तक ईश्वर अलग । किसी ने क्या अच्छा कहा है ।

जब हम थे तब गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समांहि ।

एक काम की बात मैं और लिखता हूँ । मैं लय-अवस्था या ब्रह्मलीनता पुकार-पुकार कहता हूँ कि प्राप्त करो । मगर भाई मेरा बस कुछ नहीं चलता । इसलिये कि अभ्यासियों को बहुत सी बातें, ब्रह्म विद्या के सम्बंध में सोचने का समय मिलता है । जब इन बातों को आपने समय दे दिया, तो विचारधारा इस तरफ़ उतरी हुई है, और वह ज़ोर जो ईश्वर की तरफ़ लगाना चाहिये था उसमें कमी पड़ गई । और अभ्यास द्वारा जो शक्ति आपने प्राप्त की थी वह आपने सोचने और समझने में लगा दी । अब सिखाने वाला हर तरह से दोषी है, मगर अभ्यासी किसी तरह से दोषी नहीं, इसलिये कि वह तो यह चाहता है कि हकीम (वैद्य) अपनी नब्ज़ ख़ुद देखे और दवा ख़ुद खाये और रोगी को लाभ हो । और भाई यह ठीक भी है । अगर सिखाने वाला शक्तिमान हो तो अभ्यासी का मुख ईश्वर ही की तरफ़ फेरे रखे । मगर इस के लिये मुझे कहना यह है कि श्रीकृष्ण भगवान ने दुर्योधन को समझाया और उसने कहा "यह सब अच्छी बातें हैं मगर मेरी तबियत नहीं मानती"। आख़िर को श्रीकृष्ण भगवान ने मार-काट ही करानी पड़ी । तो हर व्यक्ति की तबियत कैसे बदली जा सकती है, जब कि उसके संस्कार उस को बुरा समय दिखाने के लिये उतर चुके हैं । अब अगर कोई शक्ति पैदा हो जावे कि उन संस्कारों को जला सके तो भी वह ऐसा न करेगा, जब तक कि ईश्वर का हुक्म इस चीज़ के लिये न हो जावे, इस लिये संस्कारों को जला देना

ईश्वर के नियम के विरुद्ध है ।

अब मैं लय अवस्था को फिर लेता हूँ, कि असल लय अवस्था क्या है और ब्रह्म-लीनता किसको कहते हैं । आप हँसेंगे अगर सही बात आप को बता दूँ, मगर सही बात कहना ही चाहिये-और न मानने वालों को उनका तजुर्बा स्वयं बता देगा, अगर ईश्वर उनको यह हालत प्रदान कर दे । लय अवस्था की तारीफ़ यह है कि उसमें अपना कुछ न रहे-बल्कि जिस महफ़िल में जावे, जैसे शादी या मृत्यु में किसी के शरीक हो तो उस की हालत ख़ुशी और रंज (दुख) की वैसी ही होनी चाहिये जैसी उस महफ़िल या घर वालों की है, और जब वहाँ से वापस हो तब जैसा का तैसा हो जाये । यह फ़क़ीरी नहीं होगी कि किसी का बच्चा मरे और हम ख़ुश के ख़ुश रहें । इसको निर्दयता कहेंगे, और फ़क़ीरी इससे कोसों दूर है ।

कभी इन बातों पर ग़ौर करके तो देखो, तब पता चलेगा मैं कहाँ तक ठीक हूँ । यह ज़रूर है कि अगर कोई किसी से बुरी बात हो जाती है, तो मैं अधीनताई के रूप में यही मान लेता हूँ, कि यह मेरी ही कमज़ोरी है । मगर ज़रा ठन्डी तबियत से विचार करो कि क्या यह अभ्यासी का धर्म नहीं है कि वह अपने Character (सदाचार) को ऊँचा बनावे । हमारे गुरु महाराज पुकार-पुकार कहते थे कि Character बनाना और सदाचार सम्भालना अभ्यासी का परम कर्तव्य है । और इसकी ज़िम्मेदारी बिल्कुल अभ्यासी पर है ।

एक अभ्यासी को लिखे गये पत्र से उद्धृत ।

❑❑❑

सफ़ाई

मनुष्य की रचना में सफ़ाई बहुत ज़रूरी है और मेरा ध्यान हमेशा इसी ओर लगा रहता है तथा सचमुच यह समर्थ सद्‌गुरु लाला जी साहब का हुक्म भी है । आध्यात्मिक शिक्षण आन्तरिक सफ़ाई या चक्रों की शुद्धता से शुरु होता है जोकि आध्यात्मिक विकास में बहुत ज़रूरी तत्व है । इस प्रकार आध्यात्मिकता में सही ढंग से शिक्षण अन्दरूनी सफ़ाई से शुरु होता है जिसको नकारना, योग साधनों से प्राप्त शक्तियों के दुरुपयोग की ओर ले जाने वाला होगा । सफ़ाई करने के लिये हठयोग ज़्यादातर शारीरिक अभ्यास की सलाह देता है और उनमें कुछ सामान्य मनुष्यों के लिये बहुत ही कठिन और दुष्कर हैं । बुद्धि के सुधार या चक्रों की सफ़ाई के लिये शिक्षकों द्वारा अक्सर बताये गये कठोर मेहनत वाले लम्बे और कठिन अभ्यास निरर्थक हैं ।

सहज मार्ग साधना पद्धति में समर्थ सद्‌गुरु की प्राणाहुति शक्ति की सहायता से एक आसान मानसिक अभ्यास द्वारा सफ़ाई का कार्य किया जाता है । केन्द्र बिन्दुओं की सफ़ाई के लिये सहज मार्ग एक सरल विधि को बताता है और समर्थ सद्‌गुरु स्वयं भी प्राणाहुति क्रिया के माध्यम से सफ़ाई करते हैं । मल विक्षेप और आवरण दूर कर शरीरों की सफ़ाई की देख रेख समर्थ सद्‌गुरु करते हैं ।

सांयकाल आधा घंटा ध्यान में बैठें और यह ख्याल करें कि समस्त द्वेष, विकार, आन्तरिक कालिमा और मल आदि शरीर के पीछे की ओर से धुयें या भाप के रूप में निकल गये हैं । उनकी ओर ध्यान न लगायें जिनसे छुटकारा पाना है । अपने विचार द्वारा उन्हें निकाल फेंकते रहें ।

सायंकाल में भी प्रातःकालीन ध्यान की तरह आसन में कम से कम आधे घन्टे के लिये बैठिये और यह ख़्याल करें कि जटिलता, आप की संरचना में स्थूल जाल, पिघलकर समाप्त हो गया है या पीछे की ओर धुऐं या भाप के रूप में पिघलकर विलीन हो रहा है और हो गया है । किन्तु इसमें यह ज़रूर याद रखना चाहिये कि इस विधि का अभ्यास करते हुये बुद्धि पर ज़ोर

न डालें बल्कि सहज रूप बैठे रहें । यह आप को समर्थ सद्‌गुरु के कारगर असर को पाने के योग्य बनायेगा । प्रातः काल ध्यान के अभ्यास में भी सफ़ाई की क्रिया को लगभग पाँच मिनट कर लेना चाहिये ।

सफ़ाई चाहे गये फल को जल्द ही प्रदान करती है । परम ज्योति से मिलने के लिये हम दिन ब दिन ज्योतिर्मय और सूक्ष्म होते जाते हैं । इस स्थूलता को हटाने के लिये अभ्यासी को, जिसे इस उद्देश्य के लिये ही विधि बताई गई है, स्वयं बहुत कुछ करना पड़ता है ।

ऐसा देखा गया है कि अभ्यासियों को सफ़ाई के अभ्यास से लाभ नहीं होता है । कारण यह है कि वे इसे ग़लत ढंग से करते हैं । वास्तव में लोग पहले स्थूलता पर ही ध्यान करने लगते हैं और फिर ख़्याल करते हैं कि धुएं के रूप में पीछे से बाहर जा रही है । सच कहा जाये तो विचार द्वारा उस (स्थूलता आदि) को धुएं के रूप में बाहर फेंक देना चाहिये । सफ़ाई बुद्धि को साफ़ करने में सहायता देगी और परम सद्‌गुरु के कारगर असर को पाने योग्य बनाएगी । इस तरह चक्रों और केन्द्र-बिन्दुओं को जाग्रत और साफ़ करते हुये हम ऊँचे उठते जाते हैं ।

यह कहना काफ़ी होगा कि सफ़ाई की क्रिया आत्मा के परिष्कार के लिये मानवीय संकल्प के रूप में विचार की मूल शक्ति का उपयोग करती है जिससे कि सूक्ष्मतम मूल तत्व के तादात्म्य के साक्षात्कार हेतु ढलावदार व फिसलन वाले रास्ते को पार करने योग्य बन सके ।

❑❑❑

समर्पण और आध्यात्मिकता

अपने सभी लेखों में मैंने ईश्वर से सीधे सम्बंध को चुना है मगर आम तौर पर लोग इस को कठिन समझते हैं । इसलिये वे स्वयं मालिक (सद्‌गुरु) का सहारा लेते हैं । क़रीबन सभी मज़हबों में ख़ुदा (ईश्वर) से सीधे प्यार की बात कही गई है । मेरा मतलब हमेशा सिर्फ़ ईश्वर को समर्पण से ही होता है जिसे कि केवल निर्भरता और प्यार से ही पाया जा सकता है । अगर तुम या कोई भी समर्पण की कोशिश करते हो तो (उसमें) "मैं" होता है, "कर्ता" होता है । वास्तविक समर्पण तो स्वतः विकसित होता है ।

मेरा हाल कुछ और था । मैंने अभ्यास २१ साल की उम्र में शुरु किया जब कि मुझे मालूम भी न था कि समर्पण क्या है और इसके लिये मैंने कोशिश कभी नहीं की । मेरे लिये मेरा सद्‌गुरु सब कुछ था क्योंकि मुझे ऐसा ही (योग्य) सद्‌गुरु मिल गया था । अगर अन्जाने में मेरी ओर से कोई समर्पण था भी तो वह अकेले सद्‌गुरु को ही था । सच कहो तो सद्‌गुरु का (शारीरिक) रूप ईश्वर नहीं है वरन् उस के पीछे जो कुछ है वह दिव्य है । इसलिये मैंने उस दिव्यता को समर्पण किया न कि शारीरिक सत्ता (रूप) को । यदि तुम अपने ख़्याल में सद्‌गुरु के पूरे (शारीरिक) रूप को लाओगे तो दिव्यता पीछे रह जायेगी । (यह सिर्फ़ मेरे लिये था, मैं दूसरों को इसे करने के लिये कभी नहीं कहता ।) अतः यह सद्‌गुरु को नहीं वास्तविक सत्ता को अर्पण था । लेकिन अब मेरा अनुभव सावधान (प्रमाणित) करता है कि हमारे साथी मेरे अनुभव से फ़ायदा वसूल करें ।

हम हृदय पर ध्यान करते हैं (यह) मानकर कि वहाँ दिव्य प्रकाश है । जब हम ध्यान करते हैं तो दिव्य प्रकाश का विचार वहाँ होता है । इसका मतलब है कि तुम अपने ख़ुद के हृदय पर खेल रहे हो जो कि ख़ुद एक क्रीड़ा है, एक काम है । तुम जानते हो कि तुम ध्यान कर रहे हो, इस का अर्थ हुआ कुछ करना और स्थान, जहाँ पर तुम्हारा काम शुरु होता है, भी वहाँ है । और जहां तुम को जाना है यह विचार भी वहाँ है । सिर्फ़ यही

नहीं, अर्द्ध चेतना से किसी (चीज़) का इन्तज़ार करते हो। इसका मतलब है कि तुम निश्चेष्ट (निश्चल) नहीं हो बल्कि इतने व्यस्त हो कि एक समय में तीन काम कर रहे हो। इस तरह निष्क्रियता सक्रियता में खो जाती है।

हाँ, हमारा तरीक़ा असलियत में सबसे आसान है, क्योंकि सरलतम अस्तित्व (सत्ता) को पाने के लिये सरलतम तरीक़ा होना ज़रूरी है। वहाँ सत्ता (सत्य) है और हमारा हिस्सा बनता है। संदेह के स्थान पर विश्वास होना चाहिये।

सभी सांसारिक समस्याओं के लिये, मेरी समझ में, आध्यात्मिकता ही सिर्फ़ इलाज है जो कि एक अभिवृत्ति को विकसित करने में सहायता करता है। इसका स्वाभाविक फल आध्यात्मिकता में अत्यन्त प्रेम पूर्ण और व्यापक होता है, बुद्धि के असन्तुलित स्वभाव को हटाकर स्नेहपूर्ण रहन-सहन की विधि को विकसित करता है। यह सूझ-बूझ और उचित नैतिकता को उत्पन्न करता है जो कि रोज़ बरोज़ की ज़िन्दगी में उपयोगी है। आम को चखो और तभी तुम उस (आम) की मिठास अनुभव करने में समर्थ होगे।

दिनचर्या के रूप में आध्यात्मिक मसलों को आध्यात्मिकता से और भौतिक मसलों को भौतिक स्तर पर हल करना चाहिये, जब तक आध्यात्मिकता की उस अवस्था का न हो जाये जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्ष सन्तुलित हो जायें।

मैंने लिखा है कि सृष्टि के पहले चारों ओर दिक् या देश (Space) था। तुमने अपने पत्र में कहा है कि मैंने इस प्रसंग में अपने मत का यह लिखकर विरोध किया है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है। ईश्वर अपनी परिधिगत क्षेत्र में सर्वशक्तिमान है और केन्द्र की ओर सीमा में (शक्ति) शून्य हो जाता है। ईश्वर से सम्बंधित सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ के गुण मात्र अदृश्य (शक्ति को) गुणों से सुशोभित करने के लिये हैं जिससे कि हम गुण के पदार्थ (तत्व) की ओर बढ़ सकें। लेकिन निरपेक्ष (तत्व) सभी गुणों से मुक्त है जो कि शून्य है, जिसके लिये जिज्ञासा करते हैं।

मनुष्य की महानता उस के व्यवहार में है जो कि जीवन की बढ़ती अभिवृत्ति की संरचना करता है और आध्यात्मिकता होने पर सम-तुल्य हो जाता है। दार्शनिक रूप से यदि हम पूर्वोक्ति विचार को प्रसारित करें तो वैज्ञानिकता से यह सत्य (सिद्ध) होता है कि मनुष्य अपनी लघु परिधिगत क्षेत्र में कुछ नहीं है और जो कुछ वह है, वह केवल केन्द्रमनस सीमा में ही है।

जब हम ऊँचे जाने की सोचते हैं तब हम हमारे अपने आधार अर्थात्

वैयक्तिकता को भूल जाते हैं । यदि हम अपने को एक बिन्दु पर नहीं छोड़ते (खोते) हैं तो दूसरा बिन्दु दुर्बोध रह जाता है । यदि वैयक्तिकता का विचार नहीं खोता (छूटता) है, तो वहाँ हम पूर्ण विकसित नहीं हो पाते और जहाँ हैं वही रह जाते हैं । जब हम सत्ता की गहराई को पार करते हैं, तब हम स्वभाविक रूप से (अपनी) वैयक्तिकता को खोते जाते हैं जैसे यह इसका प्राकृतिक स्वभाव हो, और यह हमारी प्रक्रिया (अभ्यास) का फल है । खोइये और तब पाइये, या यहाँ खोना ही पाना है । जब हमें वहाँ प्रवेश मिलता है जहाँ शून्यता है और वहाँ क़ायम हो जाते हैं, तब वैयक्तिकता हमेशा के लिये अलविदा कह जाती है । मनस एक समय में एक को ही सोच सकता है । यदि तुम वैयक्तिकता के साथ हो, तो तुम आगे नहीं बढ़ सकते हो । वास्तव में सत्ता की सही अवस्था पर पहुँचने के लिये वैयक्तिकता की पकड़ ढीली करनी होती है ।

पूर्ण प्रलय के समय हर आत्मा स्रोत पर पहुँच जाती है । लेकिन क्योंकि इसी जन्म में हम उस अवस्था में प्रवेश करना चाहते हैं, इसलिये उस अवधि को बचाने के लिये, स्रोत पर पहुँचने के लिये कार्य शुरु कर देते हैं ।

यदि हम अपना विकास चाहते हैं, तो हम पर लाज़िम हो जाता है कि ध्येय को सबसे उच्च कोटि का बनायें जिससे कि हमारी लघुता फैलकर गरिमा हो जाये । यह वास्तव में ध्येयों का ध्येय है और यहाँ तक कि ध्येय के बाद ध्येय स्वतः लोप हो जाये ।

हर एक आत्मा का स्वयं अपना स्वरूप होता है और हर आत्मा जब तक मुक्त न हो पुनर्जन्म जारी रखती है ।

लगभग सभी मनुष्यों में जाग्रत अवस्था में सोने की बीमारी सामान्य है

मान लो नई आत्मायें आ रही हैं । शरीर में आने के बाद सही और ग़लत सोचने का विकास होता है । इस तरह (इसमें) ग़लत विचार और भाव आत्माओं की अधोगति करते हैं और इसलिये सफ़ाई की आवश्यकता होती है । क्योंकि हमने ख़ुद को स्वयं अपने ही विचार द्वारा पतित बनाया है, सफ़ाई अनिवार्य है ।

व्याख्या करने के लिये तुमने मुझको विचारों को दिया इसके लिये एक बार फिर शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ, जब कि ऐसे लोग भी हैं जो इससे पहले कि मैं उनकी सेवा करूँ, मुझे छोड़ देते हैं ।

❑❑❑

ईश्वर

मानव बुद्धि के उदय ही से ईश्वर के अस्तित्व के प्रश्न पर बहुत विवाद होता रहा है । असली समस्या, मेरे ख़्याल में, ईश्वर के अस्तित्व के होने या न होने की नहीं है, बल्कि सही और सन्तोष जनक ढंग से परिभाषा करने की है ।

हम एक नास्तिक की धारणा से शुरु करें कि ईश्वर नहीं है । गणित की शब्दावली में यह कहना हुआ कि इसे (ईश्वर को) सकारात्मक या नकारात्मक मूल्य नहीं दिया जा सकता है । तब भी इसे किसी चिन्ह द्वारा व्यक्त करना होगा । जिसका कोई सकारात्मक या नकारात्मक मूल्य न हो उस के लिये गणित में चिन्ह ''0'' (ज़ीरो) या ''शून्य'' है ।

अब किस का अस्तित्व है ? इस सवाल का सामना नास्तिक को करने दें । एक दृढ़ अज्ञेयवादी-अज्ञेयवादी वह व्यक्ति जिसका सिद्धांत यह है कि ईश्वर के विषय में न कुछ जाना गया है और न जाना जा सकता है — शंका कर सकता है और प्रत्येक वस्तु की सत्ता को नकार सकता है लेकिन स्वयं अपने आत्म को नहीं, अर्थात् उसे, जो शंका करता है और नकारता है । यह आत्मा या ''मैं'' समान रूप से व्यक्त होता है । फिर भी गणित की शब्दावली में बताते हुये इसे आसानी से ''१ '' (एक) के रूप में व्यक्त कर सकते हैं ।

अब '0' (ज़ीरो) की जादुई करामात देखो । जब तुम अधिकाधिक ज़ीरो को जिसकी सत्ता है अर्थात् '१ ' (एक) या स्वयं के दाहिनी तरफ़ लगाते जाओ तो यह अपने को बढ़ाता और गुणित करता जाता है । इस विस्तार की कोई ग्राह्य सीमा कठिन (असम्भव) है । उपनिषद् में इस विस्तृत अनन्त को 'महान से भी महान (महतोमहीयान) रूप में ठीक ही लक्षित किया गया है और इसे पाने के लिये आपने ईश्वर अर्थात् ''शून्य'' या ''ज़ीरो'' को अपनी दाहिनी या सकारात्मक की तरफ़ रखकर, खुद अपनी क़ीमत बढ़ाने के सिवाय, वास्तव में, कुछ भी नहीं किया है ।

अनन्तर वह जिसका अस्तित्व है अर्थात् "१" (एक) या तुम स्वयं के बायें यानी नकारात्मकता की तरफ "0" (ज़ीरो) लगाना शुरु करो। नकारात्मक ईहा (Negativating Will) यानी दशमलव बिन्दु (.) की क्रिया के साथ अधिकाधिक शून्य (0) लगाना क्रमिक रूप से एक (१) को अपने आप ज़ीरो के निकटतर ले आयेगा। फिर आत्मा के इस संकुचन की कोई सीमा होना कठिन (असम्भव) है उपनिषद् में इसे 'अणु से भी अणु' (अणोरणीयान) रूप में ठीक ही लक्षित किया गया है। नास्तिक के लिये वह जिसका अस्तित्व है अर्थात् "आत्मा" या '१' (एक) तथा वह जिसका अस्तित्व उस नास्तिक के लिये नहीं है अर्थात् "ईश्वर" या ज़ीरो (0), दोनों में अनन्त के बिन्दु पर भेद समझना कठिन (असम्भव) है। यह (भेद) नाम मात्र ही है।

इस तरह मैं विश्वास करता हूँ कि ईश्वर-अस्तित्व के सवाल पर विवाद वास्तव में निरर्थक है। यह (विवाद) वास्तव में उन ग़लत परिणामों से उत्पन्न हुआ जिनसे मनुष्य के विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के इतिहास के दौरान "ईश्वर" शब्द को लादा गया है। विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में व्यक्तिगत दुखों तथा उत्कण्ठाओं द्वारा उत्पन्न और शक्तिमान अंध और जोशपूर्ण विश्वास के तथ्य में इस रोग को अधिकाधिक गड़बड़ी से युक्त किया है। परिणामतः तर्क और विचारयुक्त मनुष्य "ईश्वर" शब्द की चर्चा मात्र ही से अरुचि (उद्वेग) ठीक ही महसूस करते हैं। तथापि यह प्रवृत्ति अन्ध विश्वास-जो अन्ततः मनुष्य को, चाहे दिगभ्रमित हो, एक शक्ति और विश्वास देता है-के तथ्य की तुलना में मानव के विघटन के लिये समान रूप से बहुत अधिक उत्तरदायी है।

अतः आवश्यकता समस्या के आवेगपूर्ण दृष्टि कोण त्यागने की है क्योंकि यह दृष्टि को धुंधला करती है और इस तरह अपने लक्ष्य की ओर मानव के विकास को रोकती है। काश, तर्क और बुद्धि युक्त मनुष्य समय पर जाग उठे और संदिग्ध रूढ़ियों के भूसे से वास्तविक अर्थ के बीज-तत्व को निकाल ले।

❑❑❑

समर्थ सद्गुरु

जब समर्थ सद्गुरू दिव्य लोक के लिये महाप्रयाण करते हैं, तब अपने सहयोगियों के कल्याण के लिये सामान्यतः स्वयं द्वारा दीक्षित शिष्यों में से एक को उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं, जिसके लिये वह प्रकाश (मार्ग दर्शन) स्वयं सद्गुरु से ही प्राप्त करता है । वास्तव में उसका काम बहुत कठिन है । बिना सद्गुरु की अनुमति के वह एक क़दम भी नहीं रख सकता और (यहाँ तक कि) एक बूँद पानी भी नहीं पी सकता है । एक छोटी सी ग़लती मात्र के लिये वह सद्गुरु के असन्तोष का केन्द्र (भागी) बन जाता है । यह समर्थ सद्गुरु के लिये हमेशा संभव नहीं है कि अपने शारीरिक अस्तित्व के अन्तिम क्षणों (दिनों) तक अपने उत्तराधिकारी का नामकरण कर सके और इसके अनेकों उदाहरण हैं । और अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, मैं समझता हूँ कि जो कुछ मैंने ऊपर कहा है काफ़ी है ।

मेरे समर्थ सद्गुरु महात्मा श्री लालाजी महाराज ने सभी कठिनाइयों का ख़्याल कर, शारीरिक व मानसिक अयोग्यताओं तथा जीवन के सीमित समय पर विचार कर अपनी सहज कृपा द्वारा एक अत्यन्त सरल मार्ग दिखाया है जिससे कि अनावश्यक श्रम और तनाव के बिना कम से कम समय में सर्वोच्च सफलता को संभव बनाया गया है ।

मेरे समर्थ सद्गुरु सरीखे व्यक्तियों का जन्म आकस्मिक नहीं है । वे तब अवतरित होते (जन्म लेते) हैं जब सारा संसार बड़ी बेचैनी से उनका इन्तज़ार करता है । ऐसे महान व्यक्तित्व या अवतार समय की आवश्यकता के अनुसार उपासना (साधना) की विधि और क्रिया में सुधार के लिये भौतिक रूप में अवतरित होते हैं (धारण करते हैं) । यही बात भगवान कृष्ण के बारे में थी, जो कि अपने समय के महापुरुष थे । मेरे समर्थ सद्गुरु ने भी वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुरूप पद्धति को सुधार कर समयोजित किया है । आध्यात्मिकता के क्षेत्र में उन की आश्चर्यजनक खोज केन्द्रीय देश (Central Region) की है जिसका वर्णन 'राजयोग का दिव्य दर्शन' में किया गया है ।

मेरा सब कुछ समर्थ सद्गुरु का है । यह क़र्ज़ कैसे अदा होगा ? सिर्फ़ एक ही रास्ता खुला हुआ है कि जहाँ तक कर सकूँ आप सभी की सेवा करूँ । मैं निष्ठापूर्वक आप सभी की पूर्ण मुक्ति की कामना करता हूँ ।

मानव जीवन के उद्देश्य को समर्थ सद्गुरु के बाद की अपेक्षा उन के जीवन में बड़ी सुगमता से पाया जा सकता है क्योंकि उनके जीवन काल के दौरान उनकी शक्ति ज्योतिर्मय होती है । जैसा कि कहा जाता है, कभी-कभी ही उनके सभी परवानों में से कुछ ही ऐसे होते हैं जो बुझी शमा पर अपने को कुर्बान करने योग्य बना पाते हैं । एक परवाना रोशन शमा पर ही कुर्बान होता है लेकिन मुश्किल से कहीं एक ही होता है जो बुझी शमा पर कुर्बान होता है, जो कि लगभग असंभव ही है । यक़ीनन इसमें कुछ अपवाद हो सकते हैं लेकिन सचमुच में ऐसे बहुत कम हैं । इसलिये इसका सिर्फ़ यही हल होगा कि या तो उस स्तर तक पहुँचा जाये जहाँ बुझी शमा पर भी कुर्बान होना संभव हो और कुर्बानी की जा सके या फिर उस उच्च पद को प्राप्त करो जहाँ पर कुर्बान होने का सवाल ही न पैदा हो । मगर यह ईश्वर की कृपा और ख़ुद की साहसी कोशिश पर निर्भर है ।

मेरे समर्थ सद्गुरु के जीवन काल के दौरान भक्त गण उन्हें चारों ओर से घेरे रहते थे जैसे शमा के चारों ओर परवाने । यह इसी लिये था क्योंकि शमा जल रही थी । वे मार्ग पर प्रगति करते गये लेकिन उनके बाद परिस्थितियाँ बदल गईं । उनमें से सिर्फ़ कुछ ही रह गये जो अपने को ख़ुद आन्तरिक आग से उस शमा पर जो बुझ गई थी, जला सकते । यह उन्हीं के लिये संभव था जिन्होंने अपने को रोशन रखने के लिये ख़ुद में पर्याप्त रोशनी जमा कर ली थी और अपनी सारी सत्ता को ही ख़ाक कर दिया था । ऐसे ही व्यक्ति की सभी नक़ल करें जिससे कि बाद में अपने को जलाने के लिये उनमें उस आन्तरिक गर्मी (जलन) की कमी न रहे ।

समय आने पर स्वाभाविक रूप से हृदयों पर प्रभाव डालने हेतु अनन्त मौन में भी प्रेरणा देने के लिये मेरा हृदय आप सभी से, यहाँ भी और वहाँ भी, जुड़ा हुआ है । लेकिन यह प्रत्येक जीवित आत्मा के लिये (ज़रूरी) है कि परम पद पाने हेतु आध्यात्मिक मार्ग के लिये जाग उठे । यह मेरी मनोकामना है कि मेरे सत्संगियों को मुझ से भी आगे बढ़ना चाहिये । लेकिन यह बस कुछ उनके प्यार, परिश्रम और ईश्वर की कृपा पर निर्भर है । जब प्यार और परिश्रम हो तो कड़ी आगे जुड़ती है और फिर झंकार निश्चित रूप से सद्गुरु तक पहुँच सकेगी । वह जिस की मुझे चिन्ता है, यह है कि जो सद्गुरु से

जुड़े हैं उनका हित हो और सद्गुरु का मिशन पूरा हो ।

मेरी पूरी ज़िन्दगी की मेहनत और बेचैनी के बाद यदि किसी में रंचमात्र भी भक्ति का माद्दा है तो स्वाभाविक रूप से वही करने को प्रेरित होगा जिससे मुझे शान्ति और संतोष मिलना सुनिश्चित हो सके । यह साधक का मुख्य कर्तव्य है । अपने को पूरी तरह खोदेने के बाद मैं चाहता हूँ आप सब मुझे खोज निकालें ।

❑❑❑

ईश्वर प्राप्ति का सरलतम मार्ग

यह मानवता के प्रति मेरे गहरे लगाव के कारण है कि अपने सहयोगियों जो कि मेरे अपने अस्तित्व के अति आवश्यक भाग हैं, के दिलों में जज़्बात उभारने के लिये मैंने अपने दिल के जज़्बातों की कुर्बानी दी है जिससे कि हरेक के दिल में शान्ति और परमानन्द की बाढ़ आ जाये । समय आने पर आप के दिलों में स्वाभाविक रूप से असर डालने के लिए अटूट ख़ामोशी में आवेग भरते हुये मेरा दिल आप सभी से यहाँ और हर कहीं जुड़ा रहता है । लेकिन शीघ्र सफलता के लिये यह हर जीवित आत्मा (साधक) पर निर्भर है कि वह परम (सत्ता) की प्राप्ति हेतु अपनी आध्यात्मिक ज़रूरतों के लिये जाग उठे ।

हम उस देश से सम्बंध रखते हैं जहाँ धार्मिक चेतना एक या अन्य रूप में सदा बहती रही है । जीवन के उद्देश्य को पाने के लिये भिन्न-भिन्न तरीक़ों को अपनाया गया है । वे ठीक हो सकते हैं यदि वास्तविक जीवन के मूल में लय होने के लिये सही माने में दिल जुड़ा हुआ हो । वास्तविकता से, जिससे हम पैदा हुये हैं, जुड़ने के लिये बड़े होते हैं । हम अपने साथ उस अनन्त का सार लाये हैं और हमें उसी के क़रीब बने रहना चाहिये जिससे अनन्त में लय होने के लिये अपने ख़्यालों को आज़ादी दे सकें । यदि इसे नकारेंगे तो हम विचार की प्रक्रिया ही से जकड़े रहेंगे, न कि मूल वास्तविकता से, जो कि असीम है । जब कोई वास्तविक लक्षण के सही तात्पर्य से अन्जान रहता है, तो मन्त्र और प्रार्थनायें सामान्यतः ख़ुशामद में समाप्त होती है ।

महान् उपदेशकों ने उच्चतम पहुँच पाने के साधनों और विधियों को बताने के लिये हमेशा सक्रिय रूप से कल्पनायें की हैं, यद्यपि हल बहुत निकट होता है । वास्तव में तुम्हारे निकटतम मार्ग ही ईश्वर का निकटतम मार्ग है । इस विषय में जीवन के उद्देश्य को पाने के लिये सरलतम मार्ग को बताकर फ़तेहगढ़ निवासी समर्थ सद्‌गुरु श्री राम चन्द्र जी ने मानवता की आश्चर्य जनक सेवा की है । आप की विधियाँ इतनी आसान हैं कि सामान्य समझ

गुरु-भक्ति : प्रदर्शन और असलियत

लोग अक्सर गुरु की भक्ति का दम भरते हैं और उस (गुरु) की अज़मत (श्रेष्ठता) को आश्कार (प्रकट) करने का दावा करते हैं, लेकिन इस की आड़ में अपनी अज़मत का डंका पीटने की फ़िक्र (चिन्ता) में रहते हैं । गुरु के तेंई (प्रति) अपनी मुहब्बत या अपने तेंई गुरु की मुहब्बत के अफ़साने (कथाएं) इस अन्दाज़ (भाव) से पेश (प्रस्तुत) किये जाते हैं कि ''देखा मेरी क्या हैसियत है ।'' यह ख़ुदनुमाई (आत्म प्रदर्शन) का ज़ोऽम (अभिमान) इस हद तक पहुँचता है कि ख़ुद (अपने) को इशारे (संकेत) से गुरु से भी बड़ा साबित (सिद्ध) किया जाने लगता है और इसे मुहब्बत की इन्तिहा (चरम सीमा) समझा जाता है कि 'ऐ महबूब तुम तो बस यों ही निहायत मामूली शख़्स (अत्यन्त साधारण व्यक्ति) हो या थे । यह तो कहो, मेरी मुहब्बत या मेरे तेंई तुम्हारे रुझान ने तुम्हें क्या से क्या बना दिया और कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ।'' इस तरह की ख़ुदनुमाई और ख़ुदपरस्ती (अर्थात स्वयं की पूजा) के हज़ारों दर्जे हैं, और इनकी बेशुमार मिसालें (अगणित उदाहरण) हर तरफ़ बिखरी मिलेंगी । ख़ुद को ख़ुदा की ख़ुदाई (ईश्वर के ईश्वरत्व) का मुम्तहिन (परीक्षक) मुकर्रर (नियुक्त) करने की मिसाल तो बहुत आम (अति साधारण) है कि अगर तू ख़ुदा है तो ऐसा करके दिखा । इसमें ख़ैर कोई हर्ज (हानि) भी नहीं, क्योंकि ख़ुदाई का दावा करने वालों की आज के ज़माने (समय) में कमी नहीं, अतः सही और ग़लत का फ़र्क़ (अन्तर) कर सकने का माद्दा (तत्व, क्षमता) हर इन्सान में ज़रूर होना चाहिये । ख़राबी वहाँ पैदा होती है, जब असली ख़ुदा या गुरु मिल जाने पर भी ख़ुदनुमाई की ख़सलत (आत्म प्रदर्शन की प्रकृति) और अदा ऐसी सूरत अख़्तियार करती (अपनाती) है कि उसकी बेख़कुनी (जड़ खोदना) एक सचमुच अच्छे गुरु के लिये ख़तरा बन जाती है, और उसके सब किये धरे पर पानी फिर जाने की हालत (स्थिति) पैदा हो जाती है ।

मुहब्बत बड़ी नायाब (दुर्लभ) दौलत है, जो ख़ुद को मिटाये बग़ैर हासिल नहीं होती और यह क़ीमत (मूल्य) अदा करना हरकस-व-नाकस (ऐरे-ग़ैरे)

के लिये इनका असान होना ही पर्दा बन गया है । सूक्ष्मतम सत्ता (ईश्वर) को पाने के लिये सरल और सूक्ष्म साधनों की ज़रूरत होती है । साक्षात्कार (ईश्वर प्राप्ति) को बहुत कठिन और जटिल काम बताया गया है । यह बात लोगों को बहुत हतोत्साहित करती है और लोग डरकर दूर हट जाते हैं । इस तरह के ख़्याल दिल से निकाल देने चाहियें क्योंकि यह संकल्प (Will) को कमज़ोर बनाता है जो कि आगे बढ़ने का एक मात्र साधन है ।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं एक आसान विधि की सलाह देता हूँ, जिसका सभी द्वारा बहुत आसानी से पालन हो सकता है-यदि कोई अपना दिल बेच सके अर्थात् दिव्य सद्गुरु को इसे भेंट में दे सके तो कोई अन्य बात शायद ही शेष रहती है । यह उसे अनन्त सत्ता में लय की ओर स्वाभाविक रूप से ले जायेगी । इस आसान और सरल तकनीक को अपना कर काम (अभ्यास) की शुरुआत ही इसका अन्त बन जाती है । व्यक्ति (अभ्यासी) के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को बदलने में भावना स्वतः ही प्रवाहित होने लगती है । जीवन के सबसे प्रिय उद्देश्य को पाने के लिये इस छोटे से हृदय को छोड़कर और कौन सी सर्वोपयुक्त भेंट हो सकती है ?

हृदय के समर्पण को प्रभावित करने के लिये, एक बात और है-सिर्फ़ संकल्प (Will) का होना । लेकिन यह संकल्प जितना हल्का (भारहीन) या शुद्ध होगा, काम उतना ही प्रभावशाली होगा । चेतना के गहनतम कोने में एक सूक्ष्म आकार के बीज रूप में संकल्प अपनी शाखाओं को चारों तरफ़ फैलाते हुये शीघ्र ही एक पूर्ण विकसित वृक्ष बन जायेगा ।

अन्त में प्रथम दिन से ही इस विधि के अभ्यास से निश्चय ही साधक वैराग्य भाव को विकसित करेगा । इसमें केवल एक साहसपूर्ण प्रारम्भ की आवश्यकता है । सच्चे जिज्ञासुओं को प्रकाश मिले और आत्मा की सच्ची आवाज़ के प्रति सजग हो जायें ।

सभी जीवित प्राणियों में सच्चे जीवन की आन्तरिक जागृति के लिये प्रार्थना से समाप्त करता हूँ ।

❑❑❑

का जिगरा (साहस) भला कैसे हो सकता है ? मुहब्बत की निहायत तंग (अत्यंत संकरी) गली में दो का एक साथ गुज़र (रहना) मुमकिन (सम्भव) नहीं । अक्सर (बहुधा) मुहब्बत और गुरु भक्ति का दम भरने वाले लोग गुरु को ख़त्म (समाप्त) करके उस गुज़श्ता (दिवंगत) की जगह ख़ुद अपने आप को जल्द-अज़-जल्द (शीघ्रातिशीघ्र) क़ायम (स्थापित) करने के लिये बेचैन (आतुर) रहते हैं । शाज़-व-नादिर (बहुत ही दुर्लभ) किसी बड़े ख़ुश-क़िस्मत (सौभाग्यशाली) गुरु को कभी एक ऐसा शार्गिद (शिष्य) कहीं मिल जाता है जो ख़ुद को ख़त्म करके अपने गुरु को ज़िन्दा जावेद (शाश्वत रूप से जीवित) रख पाता है और महज़ (केवल) उसका नुमाइन्दा (प्रतिनिधि) बनकर उस लाजवाब इल्म-व-फ़न (अक्षुण्ण विद्या और कला) के सिलसिले को फ़रोग़ देने (आगे बढ़ाने) में मदद्गार साबित होता है, जिसकी नुमाइन्दगी ख़ुद उस ख़ुशकिस्मत गुरु की शख़्सियत (वैयक्तिकता) की रूहे-रवाँ (सतत गतिशील आत्मा) का कुल हिसाब होती है । भला ऐसे गुरु और ऐसे शार्गिद के रिश्ते (सम्बंध) का रम्ज़ (रहस्य) कौन कैसे बता सकता है । यह तो बस सीना-दर-सीना (एक वक्ष के अन्दर से दूसरे वक्ष के अन्दर तक) फ़ैज़ की रवानी (ललित-अनुकम्पा प्रवाह) की दास्तान (कहानी) है ।

मुहब्बत बेशक अज़ीम शै (निःसन्देह श्रेष्ठ वस्तु) है । हिन्दी के ढाई और उर्दु या अंग्रेजी के चार हुरुफ़ की तन्ज़ीमे-ख़ास (अक्षरों की विशिष्ट-व्यवस्था) मंज़िले-मक़सूद (लक्षित गन्तव्य) तक रसाई (पहुँच) के इल्म व-अक़्ल के हुसूल से बालातर मुक़ाम (विद्या और बुद्धि की उपलब्धि से उच्चतर स्थान) तक बेहतर रहनुमा (श्रेष्ठतर पथप्रदर्शक) है । मगर बज़ाते ख़ुद (अपने आप में) मन्ज़िले मक़सूद नहीं । इसकी वज़ाहत (स्पष्टीकरण व्याख्या) में हज़ारहा (सहस्रों) किताबें लिखी जा सकती हैं । मुख़्तसर (संक्षेपतः) यह कि इल्म-व-अक़्ल की रसाई की इब्तदाई (आरम्भिक) रुहानी मंज़िल (आध्यात्मिक गन्तव्य) तो यह है कि (बेटा/बेटी-माँ/बाप, शौहर-बीवी (पति-पत्नी) गुरु-शार्गिद वग़ैरा ख़ुद उनकी हैसियत में नहीं, बल्कि अपने ही लिये प्यारे होते हैं । मैं इस आलमे-फ़ानी (नाशवान संसार) के तमाम रिश्तों को निभाकर आख़िर क्या हासिल (प्राप्त) करूँगा, यदि यह मुझे ख़ुद अपने को हासिल करने में मदद्गार (सहायक) साबित (सिद्ध) नहीं होते । जानवर (जीवित प्राणी) की शक्ल लेकर पैदा होना और जानवर की ही तरह मर जाना इन्सानियत (मानवता) की तौहीन (अपमान) है । इल्म-व-अक़्ल ही इसकी तरदीद (खण्डन) करते हुये रूह (आत्मा) यानी ख़ुद (स्वयं) की तलाश (खोज) में अस्बात (धन चिन्ह +) की जगह नफ़ी (ऋण चिन्ह) की अहमियत

(महत्ता) का इशारा करती है कि "ख़ुद" को हासिल करने का बेहतर तरीक़ा ख़ुद का खो जाना या मिट जाना या भूल जाना है। ख़ुदी का इख़्तेताम (अहन्ता की समाप्ति) ख़ुदाई (ईश्वरत्व) की पहचान है। इसी सिलसिले में आगे मुहब्बत-नामे (प्रेमाख्यान) की तवील तालीम (लम्बे प्रशिक्षण) का बाब (अध्याय) खुलता है कि ख़ुद फ़रामोशी (अपने को भूल जाना) मुहब्बत की फ़ितरी तहरीर (स्वाभाविक व्याख्या/विबृति) है। यों कहें कि ख़सो-ख़ाशाक, नफ़ी-अस्बात की रूहानियत (रूखी सूखी कूड़ा-करकट ऋणात्मक-धनात्मक आध्यात्मिकता) की जगह रसभरी शीरीं हुज़ूरी (प्रियतम-प्रभु के समक्ष सरस मधुर-विद्यमानता) की होशरुबा मस्ती (होश हवास चुरा लेनेवाली उन्मत्ता) फ़राहम (प्रस्तुत) कर दी गई। बरतरी (श्रेष्ठता) सभी कंही बेशक ज़्यादा ख़तरनाक होती है। लिहाज़ा (अतः) मुहब्बत के मामले में शीरीनी (मिठास) की मुतलाशी(खोज करने वाली) ख़ुद गरज़ लालची मक्खी और चिराग़ की लौ पर निसार (निछावर) पतंगें का फ़र्क़ (भेद) ज़र्बुल्मस्ल (प्रसिद्ध कहावत है। बुझे चिराग़ के परवाने (पतंगे) की मिसाल बहुत ख़ूब (सुन्दर) है मगर-कमयाब (दुर्लभ)। अलावा अज़ीँ (इस के अतिरिक्त) मुहब्बत की पुरख़रोश मस्ती (चीख़ पुकार युक्त उन्मत्ता) बदतर बन्दिश (अधिक खराब बंधन) का ताना-बाना तैयार करती है जिसको रुहानियत का बालातर दर्जा (अध्यात्म का उच्चतर सोपान) होने की सनद (सर्टीफ़िकेट) देने वालों के वहम (भ्रमक विचार) ने इल्मे रुहानियत (अध्यात्म) और ब्रह्म विद्या को जो नुक़सान पहुँचाया है, उसकी तलाफ़ी (क्षतिपूर्ति) बहुत मुश्किल बन गई है। मुहब्बत के शर व शर (गुलगपाड़ा और शरारत) के उफान और जोश (उबाल) के बाद जो समासम कैफ़ियत (हालत) है वह मुहब्बत के घन चक्कर से छुटकारे का बालातर मुक़ाम (उच्चतर स्थान) है, जहाँ अन्दरूनी सुलगाव की ख़ामोश बेचैनी की सल्तनत (साम्राज्य) होती है और आगे यहं भी नहीं रह जाती। यहाँ पहुँचकर कर्म, ज्ञान और भक्ति वगैरः के झगड़ों से ऊपर असल रुहानियत का दरवाज़ा (द्वार) खुलता है, और असली रुहानी सफ़र (आध्यात्मिक यात्रा) शुरु होता है। यहाँ तक माद्दियत (भौतिकता) का ही हल्क़ा (क्षेत्र, घेरा) जाँगुज़ीद (प्राणान्तक) बना रहता है, जिसे रुहानियत के मग़ज़ के मुक़ाबिल (अध्यात्म के सार तत्व के समक्ष) सूखी हड्डी ही कहना चाहिये, जिस के लिये परलोक के दिलदादा (प्रेमी) और ठेकेदार, कुत्तों की तरह लड़ते हैं, और सूखी हड्डी चूसने में खुद अपने ही मुँह के जख़्मों (घावों) के बहते ख़ून आदि की लज़्ज़त (स्वाद) को मन्ज़िले-मक़सूद तक रसाई (लक्षित गन्तव्य तक पहुँचने) का हिज़्ज़ (आनन्द) समझ कर महज़ूज़ (आनन्द

मग्न) होते हैं, और बाक़ी सभी को रुहानियत से बे बहरा (अध्यात्म-से वंचित) समझते और बताते हैं ।

सही रास्ते (समुचित मार्ग) के बारे में तनाज़ेआत (झगड़ों) के समासम हालत में तहलील (लय) होने पर निहायत पुर सुकून (अत्यन्त शान्त) हालत में रुहानियात का असली सफ़र शुरु होता है, जिससे कर्म, ज्ञान और भक्ति आदि सुकूत (शान्त, उतार-चढ़ाव रहित) की शक्ल में रहते हैं । उनकी गर्मी का उबाल समाप्त होकर उन की ठन्डी हालत में उनका आपस में कोई तनाज़ेआ बाक़ी नहीं रहता, और सिर्फ़ रूह (आत्मा) के ख़ुदा (परमात्मा) में तहलील (लय) होने यानी दूसरे लफ़्ज़ों (शब्दों) में बूंद के समुद्र में मिलने के दर्जे (सोपान) यके-बाद-दीगरे (एक के बाद दूसरे) हल्की और नफ़ीस (उदात्त) हालत में ख़ुद के मिटने का बेहद दिलकश नक़्शा (अत्यन्त आकर्षक मानचित्र) पेश (प्रस्तुत) करते हैं, जिसके सामने (समक्ष) वह सारी दिलकशी (मनमोहकता) हेच (तुच्छ) है जिससे इन्सान इस दुनिया में अपनी ज़िन्दगी के दौरान (काल, समय) आश्ना (सुपरिचित, सुसंलग्न) होता है । बेशक (निःसन्देह) यह मौत का सफ़र है, और मौत ज़िन्दगी से बदरजहा दिलकश (अनेकों गुणा अधिक-चित्ताकर्षक) हैं । लेकिन यह मौत भी वह नहीं है, जिससे दुनिया में अपनी ज़िन्दगी के दौरान आम (साधारण) आदमी का तआर्रुफ़ (परिचय) होता है, और हमेशा वह उससे ख़ौफ़जदः (भयभीत) रहता है । आत्मानन्द से ब्रह्मानन्द में तजावज़ (प्रगति) करने का यह सफ़र (यात्रा) कितना लज़ीज़ (स्वादिष्ट) और दिलकश (चित्ताकर्षक) है यह आम ज़ुबान (सामान्य भाषा) में ब्यान होना सम्भव नहीं । लेकिन यह असली चीज़ है, ख़्वाब-व-ख़्याल (स्वप्न और विचार) वहम-व-गुमान (भ्रम और धारणा) कल्पना की उड़ान वगैरः नहीं । इस सफ़र को तै करने के लिये गामज़न (उद्यत) होने की हिम्मत बहुत कमयाब (दुर्लभ) है, हाँलाकि ख़्वाबीदगी (स्वाप्नलता) के आगे ख़ालिस नींद (सुषुप्ति) की हालत की लज़्ज़त (स्वाद) हर इन्सान को नसीब (भाग्य से प्राप्त) रहती है और इसके बग़ैर ज़िन्दगी भी वबाल (जन्जाल) बन जाती है । यह मौत का सफ़र दर असल (वास्तव में) रूह (आत्मा) का अपनी असल तह, बुनियाद या जड़ की तलाश, जिस में रसाई (पहुँचना) उस मन्ज़िले-मक़सूद की हद (सीमा) में दाख़िला (प्रवेश) दिलाती है, जिसमें सबात-व-नफ़ी, होना और न होना, वहदत-व-कसरत (एकत्व और अनेकत्व) वगैरः का फ़र्क़ बेमानी (अर्थहीन) है । लिहाज़ा (अतः) बूँद और समुद्र का फ़र्क़ भी नहीं है । सफ़र (यात्रा) फिर भी बाक़ी (शेष) है, जिसको समुद्र के बूँद में, ख़ुदा (ईश्वर) के ख़ुदी (वैयक्तिक अहंता) में तहलील (लय) होने

के मनाज़िल (गन्तव्य बिन्दु) कहा जा सकता है। यही सेन्ट्रल रीजन (केन्द्रीय क्षेत्र) की तैराकी है। इसके पहले का सफ़र अगर मौत के मनाज़िल तै करना कहा जाय, तो अब जो सफ़र दरपेश (सामने) है वह ज़िन्दगी और मौत के बाद की ज़िन्दगी या हस्ती (होने) का सफ़र कहा जा सकता है, जो ज़िन्दगी ही ज़िन्दगी है। इससे ज़्यादा क्या कहा जा सकता है, और यह कहना भी महज़ (केवल) कहने भर को है।

यह सब कितना आसान (सहज) है, और कितना मुश्किल ! सींक की ओट पहाड़ का मज़मून है। यह सब आसान कब और किसके लिये है ? जब कि जो कोई उस (मालिके-कुल) का हो रहे, और उस पर अपने को छोड़ दे। मुश्किल कब और किसके लिये ? जब जो कोई उस (मालिके-कुल) को अपने लिये इस्तेमाल करना चाहे और उसे अपने पर मुनहसिर (निर्भर) रखने का इरादा करे, और अपने इस इरादे को तकमील (पूर्णता) देने की कोशिश में मुब्तिला हो (फंस जाये)। क़िस्सा कोताह (संक्षिप्त कहानी) यह कि सारा दार-व-मदार (रख-रखाव) इस बात पर है कि मरकज़ (केन्द्र) में मालिके-कुल को रक्खा गया है या ख़ुद अपने को ! बिल-आख़िर (अन्ततोगत्वा) होता वही है जो मन्ज़ूरे-ख़ुदा (प्रभू को स्वीकार) होता है।

❑❑❑

गुरु और शिष्य का आदर्श

हम बसन्त पंचमी के इस शुभ अवसर पर इस लिये जमा होते हैं कि ऐसी हस्ती का जन्म दिन मनायें जिसका नाम हमेशा सूर्य की भाँति चमकता रहेगा। यह दिन इस मिशन के लिये विशेष महत्व का है। यदि ऐसी बुज़ुर्ग हस्ती की तारीफ़ की जाये या घटनाऐं बयान की जायें तो पन्ने के पन्ने रंग जायें। केवल इतना कह देना काफ़ी है कि उन के एक तुच्छ गुलाम में यदि उन की कुछ झलक मौजूद है, और आप लोग इतनी थोड़ी मुहब्बत करते हुये भी ईश्वरीय आँच से सिंक रहे हैं, तो गुरु महाराज का अन्दाज़ा कुछ न कुछ लग ही जावेगा। "ज़र्रा (रज कण) में चमक आफ़ताब (सूर्य) की है।" जिस प्रकार सूर्य की किरणें यह बतला देती हैं कि सूर्य इस समय मौजूद है, उसी प्रकार ज़र्रे की दमक यह बतला सकती है कि उस में आफ़ताब की रोशनी मौजूद है। दूसरे अर्थ में, आप लोगों के दिल इस बात के स्वयं गवाह हो सकते हैं कि ज़रूर कुछ न कुछ रोशनी, जैसी कि आफ़ताब की ज़र्रे पर पड़ रही है आप लोगों में भी मौजूद है। अब यह आप लोगों की पात्रता रही कि आप लोग ख़ुद ऐसे बन जायें कि अपनी चमक दूसरों में इस प्रकार फैला दें जैसे कि आफ़ताब की रोशनी हर चीज़ को प्रकाशित कर देती है।

अब यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? यह बात केवल उसी समय सम्भव हो सकती है जब लोगों का लगाव ऐसे आफ़ताब से हो जावे जो सब को प्रकाशित कर देता है, अर्थात् आप अपना सम्बन्ध आफ़ताब से जोड़ लें। हमारे जो कुछ ध्यान, अभ्यास आदि होते हैं, सब का यही उद्देश्य होता है कि हमारा सम्बंध ईश्वर से जुड़ जाये और जो चीज़ वहाँ मौजूद है बहती हुई चली आवे। इसी के लिये हम भक्ति भी करते हैं क्योंकि प्रेम से लगाव बहुत जल्दी पैदा होता है। इस के लिये उपाय असंख्य हैं और हर व्यक्ति के लिये नुस्ख़े अलग-अलग, और ये अपनी पवित्र पुस्तकों में मिलते हैं। जो मनुष्य जिस योग्य है उस के लिये वैसे ही उपाय महात्माओं और बुज़ुर्गों ने निर्धारित किये हैं। यह चीज़ या अभ्यास जो हम सहज मार्ग में कर रहे

हैं सब से ऊँचा और श्रेष्ठ है । इसकी बारीकी जब तक कि काफ़ी उन्नति न हो जाये, समझ में नहीं आती । बाइस साल ध्यान, तल्लीनता और अभ्यास, जो कुछ मुझ से हो सके, करने के बाद मेरी समझ में आया कि यह चीज़ क्या है । अब मैं इस चीज़ को किस उपाय से आप लोगों के सामने रक्खूँ और किस प्रकार समझाऊँ । गेहूँ का स्वाद केवल ज़ुबान अनुभव कर सकती है, किन्तु ज़ुबान व्यक्त नहीं कर सकती । आगे चल कर यह हालत हो जाती है । फिर भी बहुत कुछ इस दर्शन को खोलने की मैंने पुस्तकों और पत्रों के द्वारा कोशिश की है जहाँ तक कि मैं उसे खोल सका । मेरी तबियत यही चाहती है कि मुझे जो कुछ थोड़ी बहुत बातें मालूम होती जाती हैं, सब की सब उगल कर रख दूँ । किन्तु यह सब मालिक के हाथ में है; सिर्फ़ मालिक के हाथ में, वह जब मेरे लिये ऐसा सामान इकट्ठा कर दें तभी यह सम्भव हो सकता है ।

मैं इस लेख में सहज मार्ग दर्शन या अन्य गहरी चीज़ नहीं ला रहा हूँ, बल्कि मतलब की बात सत्संगी भाइयों के लाभ के लिये व्यक्त कर रहा हूँ और अपना अनुभव अर्थात् जिस अभ्यास से मुझ को लाभ हुवा है वह प्रस्तुत कर रहा हूँ । इस में कुछ बातें ऐसी भी हैं जिनको मैंने कुछ सोच कर सर्वसाधारण रूप में व्यक्त करने की कोशिश नहीं की । इस लिये कि उनका मतलब कुछ और ही न समझ लिया जाये । किन्तु विवशता यह है कि यदि इन घटनाओं को न खोला जाये तो कहीं ऐसा न हो कि मेरे साथ चली जायें । मेरा अभिप्राय इन सब बातों से यह है कि लोग धोखे से कहीं मुझ को गुरु न समझ लें । लोगों का अनुभव सिद्ध कर देगा कि मेरा व्यवहार भाई-चारे का रहा है और जीवन भर रहेगा । यही हाल मेरे गुरु महाराज का रहा । जीवन भर उन्हें यह ख़्याल कभी नहीं आया कि "मैं गुरु हूँ" और न कभी इस प्रकार का व्यवहार रक्खा । हमेशा भाई चारे का तरीक़ा अपनाया, बजाय सेवा लेने के ख़ुद सेवा की । यह केवल उन्हीं की हस्ती थी और अपने ज़माने की वह आप ही मिसाल हैं । इसी विधि से सेवा करने के लिये मैं भी तैनात हुआ । मुझे आप ही के क़दम ब क़दम चलना है और यही दुआ कि मैं इसमें कामयाब बनूँ । मैं ईश्वर को साक्षी रख कर कहता हूँ कि मैंने सिवाय उस आँख के दूसरी आँख नहीं देखी । मुझे ईश्वर से वास्ता न रहा, मैंने तो सभी कुछ उन्हीं को समझ लिया था । इश्के हक़ीक़ी की उलझन में मैं कभी न पड़ा, मुझे तो हमेशा इश्क़े मजाज़ी से ही सरोकार रहा । ईश्वर से मिलने की इच्छा मुझे कभी पैदा न हुई और न यह इच्छा हुई कि आवागमन से रहित होऊँ और इस वक़्त तक यही वास्तविकता है कि सिवाय "आप"

के किसी को न जाना । जहाँ देखा ''आप'' ही का जलवा देखा और सम्भव है कि अब तक मेरा यही हाल हो । कोई पूछे तुमने यह क्यों किया ? इस का उत्तर केवल मजनूं ही दे सकता है । उस के प्रेम करने के लिये केवल एक लैला ही थी उसको इससे मतलब न था कि लैला काली-कलूटी है या ख़ूबसूरत, उसे तो प्रेम से मतलब था ।

भाई, यह है मेरी राम कहानी । कहने के लिये तो लोग यह कह लेवें कि मैं गुमराह हो गया, किन्तु मैं यह कहूँगा कि मैंने यह सौदा जुनून (पागलपन) से ख़रीदा । इस सौदे का ख़रीदार वही हो सकता है जिस के दिल में कुछ झलक जुनून की बाक़ी हो । कोई व्यक्ति दुनिया के लिये दीवाना बनता है और कोई उक़बा (परलोक) का ख़रीदार । मेरे दिल से दोनों चीज़ें ग़ायब थीं । निगाह लैला की तरफ़ थी और मैं सच कहता हूँ कि मजनूं की भान्ति दीवाना बना । सिर्फ़ ''आप'' के लिये घूमता रहा, मुझे अगर कुछ फ़िक्र थी तो सिर्फ़ उसी की, और जुनून बढ़ता ही गया । नतीजा यह हुआ कि इस की तमीज़ (विवेक) भी बाक़ी न रही कि किस का जुनून था और क्या सौदा !

मैं यही चाहता हूँ कि आप लोग वादिए-एमन (परम सुख की घाटी) की सैर करें और मेरी दुआ भी यही है, यद्यपि मैंने अपने आप तो वादिए-जुनून (पागलपन की घाटी) में ही क़दम रखा और उसी की सैर की । भाई, अगर मेरे दिल से पूछो तो यह जुनून ही पुख़्तगी (परिपूर्णता) की अलामत (चिन्ह) है, और यह सौदा ही जुनून की मिसाल है और सभी क्रियाएं और ध्यान इसी के लिये हैं । ईश्वर का कोई रूप नहीं, वह सब में प्रकाशित है । अगर हम उसका प्रकाश किसी विशिष्ट अस्तित्व में देखते हैं तो नीयत (विचार) यही बनती है कि उसी की बरकत (विभूति) उसमें विद्यमान है । अब यदि किसी में खुले रूप में यह बात मौजूद है तो मैं अपने बचाव में यही कहूँगा कि ऐसे व्यक्ति से प्रेम करने में निगाह स्वयं उस चीज़ पर पहुँच जायेगी जो उसमें प्रकाशित है । किन्तु भाई, ऐसे अस्तित्व कम मिलते हैं और वह लोग इससे भी कम जिनके पास केवल पागलपन का सौदा हो । फिर भी कुछ न कुछ सहारा, हमको लेना ही पड़ता है इसलिये हमको चाहिये कि हम सहारा ऐसे व्यक्ति का लें, जिसमें वह झलक ज़्यादा से ज़्यादा मिल सके । भड़क तो बहुत जगह मिलेगी मगर झलक कम मिलने वाली वस्तु है; और भाई झलक भी मिलेगी, मगर उससे ऊपर की वस्तु शायद ही कहीं मिल पाये । अब ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध पैदा करने के लिये इसको कुछ

ही समझ लिया जावे, चाहे भाई, चाहे पिता और चाहे नौकर या ग़ुलाम। मतलब सिर्फ़ रिश्ता क़ायम करने से है, जिससे मुहब्बत का डोरा लग जावे और यह रिश्ता वास्तविक रूप में उस समय जुड़ा समझना चाहिये जब कि जिस रिश्ते से मोहब्बत की है वह चीज़ भूल जावे; और जब रिश्ते की भी ख़बर न रहे तब यह समझना चाहिये कि निस्बत जुड़ गई। जितनी ही अच्छी निस्बत जुड़ेगी उतनी ही अच्छी फ़ैज़ की रवानगी रहेगी और भाई अख़लाक़ (व्यक्तिगत) भी उसी समय पूर्ण होता है जब कि सब तरफ़ से निस्बत टूटकर उस तरफ जुड़ जावे, केवल कर्तव्य परायणता शेष रह जावे।

अख़लाक़ (चरित्र) रुहानियत (आध्यात्मिकता) की जान है। हमको उस ओर रूजू होना चाहिये और जो बाह्य बन्धन और नियम चरित्र सुधारने के हैं उनपर अमल आवश्यक और अनिवार्य है। बिना अख़लाक़ का आदमी इस प्रकार है जैसे वह चन्दन जिसमें ख़ुश्बू न हो। ऐसी दशा में आप उसको लकड़ी ही कहेंगे, चन्दन नहीं कह सकते। चन्दन बनाना है तो वह महक पैदा कीजिये। इस के लिये यहाँ दस नियम बना दिये गये हैं और क्रियायें भी ऐसी बता दी गई हैं जिनसे चरित्र सुधरने में काफ़ी सहायता मिलती है और वह बातें जल्द दूर हो जाती हैं जिनके शिकार अधिकतर लोग साधारणतः रहते हैं।

❑❑❑

अमर विचार

हम नाचघर में एक कठपुतली बन गये हैं, ख़ुद ही नाच रहे हैं और सिर्फ़ ख़ुद ही इस से ख़ुश हैं। इसके जादू में इस सीमा तक खो गये हैं कि हम इसमें बहुत मज़बूती से जकड़े हुये हैं। हालांकि इस से बाहर निकलने का ख़्याल आता है, मगर यह लगाव एक बहुत मजबूरी का बन्धन बन गया है। हम इससे छुटकारा पाना चाहते हैं लेकिन बन्धन बहुत मज़बूत हो गया है। इससे छुटकारा पानेका हम पक्का इरादा बना लेते हैं मगर हमारी कोशिश बेकार जाती है क्योंकि इस के लुभावने जादू में कुछ ऐसा लुत्फ़ आता है कि इस के खिंचाव से हम अपने ध्यान को हटाने में अपने को नाक़ाबिल पाते हैं। इस से छूटने की राह तभी हो सकती है, जब हम इस की असलियत को असलियत की छाँव के रूप में समझ लें और जब हम अपने ख़्याल को इसके कारण या मूल तक ले जायें अर्थात् जब हमारी निगाह बार-बार इसकी हक़ीक़त तक जाती रहे तो इसको ही सतत् स्मरण कहते हैं। इसे पैदा करने का अभ्यास ध्यान है और जब हम इस को करना शुरू करते हैं तो उस मूल से हमें स्वतः मदद आनी शुरु हो जाती है। जब हम उससे जुड़ जाते हैं तो इसका जादू ख़ुद-ब-ख़ुद चूर-चूर हो जाता है।

यह अच्छी बात है कि इरादा बना लिया है मगर इसको पूरा करना भी केवल आप के हाथों में है। यदि हम असलियत और सच्चाई की महानता का गहरा असर अपने दिल पर बना लेते हैं, तो यह नहीं हो सकता है कि हम उसका ध्यान न शुरु करें। यह स्वाभाविक है कि आग से जला हुआ जब पानी को देखता है तो बेतहाशा उसकी ओर इसका ख़्याल किये बिना दौड़ता है कि पानी का असर जले शरीर में फफोले बना देगा। ठीक यही बात हमारे स्वभाव में होनी चाहिये, जिससे कि हम अपने को डुबो सकें, ठीक उसी तरह हम सच्चाई और असलियत को पा सकें। लेकिन भाई यह तभी पूरी तरह सम्भव हो सकता है, जब हम आग की जलन को महसूस करना शुरु कर दें। मेरी ख़्वाहिश है कि आप को अपने मंसूबों में कामयाबी हासिल हो और ईश्वर रहम अता करे जिससे कि तुम्हारा ख़्याल इस ओर

रूजू हो सके ।

यह बहुत अच्छा है कि महापुरुषों का दर्शन करना पसन्द करते हो । लेकिन मेरी दिली ख़्वाहिश है कि आप सिर्फ़ अपना ही दर्शन करना शुरु कर दें । कुछ अभ्यासी लिखते हैं कि वे असलियत को एक दम पाना नहीं चाहते हैं क्योंकि वे बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे । तो भाई यह सब मुझ पर छोड़ दो । यह उसूल है कि रुहानी सफ़र धीरे-धीरे क़दम-ब-क़दम चला जाता है । यदि मैं अभ्यासी की ख़ुद की क़ाबलियत को ख़्याल न करूँ तो मैं क्या सिखाऊँगा ? कृपया इस से मत डरिये । न तो इस में घर-चूल्हे को छोड़ने का सवाल है और न ही जीवन को कोई ख़तरा है । अभ्यासी यह भी लिखते हैं कि वे समर्पण करते हैं पर सन्देह प्रगट करते हैं कि पूरी तरह (समर्पण) कर सके या नहीं । संदेह को दूर भगा दो । अभ्यासियों ने तो पहले ही समर्पण कर दिया है । जब अभ्यासी के दिल में सहयोग (का ख़्याल) फूट पड़ता है, तब समर्पण की पहली सीढ़ी पर पहले ही पहुँच जाता है और उसके बाद बहुत से निशानात हैं जिन्हें ज़रूरत होने पर बताया जाता है ।

इसलिये हिम्मत के साथ इरादा बनायें । ईश्वर इसमें आप की मदद करे । जिससे कि सभी उस अवस्था तक पहुँच सकें, जहाँ सभी इसको भली प्रकार से समझ सकें । यह कोई मुश्किल बात नहीं है । रुहानी दायरे में मुक्ति के लिये पक्के इरादे से क़दम रखो और देखो मुक्ति मिलती है या नहीं ।

हमारा उसूल यही है कि हमें यह संसार और वह संसार दोनों ही साथ ही साथ मिलें । मेरे सद्‌गुरु (श्री लाला जी) इसके एक आदर्श हैं और मैं भी हूँ चाहे किसी रूप में सही । बच्चों को छोड़कर जंगल में जाकर रहना वैराग्य नहीं है बल्कि दिल पर बिना असर डाले सभी जुम्मेदारियों का सावधानी पूर्वक पूरा करना ही असली वैराग्य है । या तो आपने प्यार नहीं किया है या आप को प्यार करने वाला नहीं मिला है । प्यार तो एक दिली कारोबार है और यह दिल को बेचकर ही पाया जाता है । मुझे बड़ी ख़ुशी होगी यदि मेरी सेवायें स्वीकार की जायें । यह मुझे बहुत ज़्यादा ख़ुशी देगा कि मेरी सेवाएँ सारी मानव जाति के काम आयें ।

❑❑❑

समर्थ सद्‌गुरु की समुचित शागिर्दी

रुहानियत के समर्थ सद्‌गुरु की पैरवी और शार्गिदगी का मेयार यह है कि इस इल्म पर अख़्तियार हासिल हो और उस सिलसिले को फ़रोग़ देने की अहलियत पैदा हो जो कि समर्थ सद्‌गुरु की अहमियत और निस्बत की ख़ासियत है । गुरु को ख़िदमत वग़ैरह के ज़रिये ख़ुश रखने में कोई हर्ज नहीं लेकिन उसके साथ और उस के ज़रिये अगर असल चीज़ पर उबूर (पारंगति, प्रवीणता, अधिकार, आधिपत्य) हासिल न हो सका तो उस्ताद की ख़ुशी शार्गिद और उस्ताद दोनों के हक़ में सख़्त मुज़िर (हानिकारक) साबित हो सकती है । मिसाल के तौर पर रियाज़ी का उस्ताद (गणित का शिक्षक) अगर पैर दबाने और घर का सौदा सुल्फ़ बाज़ार से लाने वाले (Procuring the household provisions from the market) शार्गिद से ख़ुश होकर उसे अच्छे नम्बर दे और फिर अपनी जगह पर उस की तक़र्रूरी (नियुक्ति) करके रिटायर हो जाये तो उस शार्गिद और ख़ुद अपने हक़ में सख़्त नुक़सान करने के अलावा इल्म रियाज़ी और उसकी तालीम के सिलसिले के तेंई (प्रति) अपनी ज़िम्मेदारी से बरतरफ़ होने का मुजरिम होता है, जिस की मुआफ़ी नहीं हो सकती ।

यह कह सकते हैं कि रुहानियत और रियाज़ी में फ़र्क़ है (It may be asserted that there is a difference between Spirituality and Mathematics) और ब्रह्म विद्या में शार्गिद की तरक़्क़ी गुरु यानी परमात्मा की मर्ज़ी और कृपा पर ही मुनहसिर (आश्रित) होती है । यह सच हो तो भी कृपा हासिल करने की अहलियत (Capability, पात्रता) और शर्त (Condition) मामूली स्कूली मज़ामीन (विषयों, Subjects) और उनके असातिज़ा (उस्तादों) की शागिर्दी की शरायत से कुछ ज़्यादा ही मुश्किल समझना चाहिये । समर्थ सद्‌गुरु और परमात्मा बेशक किसी बन्दिश (बन्धन) के तहत (अधीन) नहीं, लेकिन इस लिये वह हर कसो नाकस की मर्ज़ी के ताबे (अधीन) कृपा करने के लिए मजबूर तो नहीं हो सकते । उनके मजबूर होने की शर्त हिर्सोहवस (लालच और वासना) के बन्दों की ख़्वाहिशात के ताबे फ़रमान (आज्ञा के

अधीन) नहीं । वह तो सदियों में किसी ऐसी बुझी शमा के परवाने के ज़रिये पूरी हो पाती है जिस की ख़्वाहिशात की शमा क़तई बुझ चुकी हो और जो सब तरफ़ से क़ता ताल्लुक़ (सम्बंध विच्छिन्न) होकर सिर्फ़ एक का ही बेदाम ग़ुलाम और बिला शर्त ताबे फ़रमान हो चुका हो । ऐसी अहलियत और शागिर्दगी उन लोगों की मजाल क्योंकर हो सकेगी जो दिन रात मूर्ति की पूजा, ख़ुशामद जैसे गुड़ियों के खेल में मस्त रहते हैं, और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ कोई बात न होने की सूरत में देवता या ख़ुदा के बुत को फेंकने या उसको ज़लील करने को तैयार हो जाते हैं, जैसे कि ख़ुदा उनका ग़ुलाम हो । ऐसे लोग अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ होने की सूरत में अपने बाप को भी नही बख़्शते । परस्तिश (पूजा) और एतक़ाद (विश्वास) उन के लिये अपना काम निकालने और अपना उल्लू सीधा करने का ज़रिया होते हैं, जिस की हैसियत रियाज़ी के उस्ताद के पैर दबाने और घर का सौदा सुल्फ़ लाने वाले शार्गिद की मिसाल से भी गई बीती कहना चाहिये ।

रुहानियत और उसके समर्थ सद्‌गुरु को लोगों ने जाने क्या समझ लिया है । कोई उन के दर्शन या बचन या प्रसाद या चरणामृत वग़ैरह को काफ़ी समझता है, कोई ख़ुशामद को मुहब्बत मानता है । ऐसे लोगों का गुरु पर एतक़ाद उतना भी नहीं होता जितना कि एक मामूली तिफ़्ले मक्तब (स्कूली बच्चे, School boy) को अपने उस्ताद पर होता है, क्योंकि तिफ़्ले मक्तब का मक़सद इल्म हासिल करना होता है, जिसके लिये वह उस्ताद की डाँट-फटकार और सज़ा वग़ैरह को बर्दाश्त करने को तैयार रहता है । रुहानियत को इल्म की हैसियत से हासिल करने की ग़रज़ से बहुत कम लोग गुरु के पास जाते हैं । लिहाज़ा रुहानी तालीम के सिलसिले में किसी तरह की सख़्ती का सवाल नहीं । बद्‌दुआ वग़ैरह के ज़रिये जिस काम के लिये आते हैं उसमें ख़लल (बाधा) पैदा होने का डर ज़रूर हो सकता है । सही तालीम करने वाले असली समर्थ गुरु को स्वयं ख़ायफ़ (डरा हुआ, भयभीत) रहना पड़ता है कि चंद लोग, जो तालीम हासिल करने की ग़रज़ से आते हैं, कहीं उन्हें ख़ुद अपने समर्थ सद्‌गुरु के क़र्ज़े की अदायगी के एक मौक़े से महरूम (बंचित) न कर जायें । रुहानियत को बदनाम करने वाले ख़ुद को समर्थ सद्‌गुरु समझने और कहलाने को बेताब उस्ताद-लोग बेशक अपने भक्तों को दर्शन, चरणामृत वग़ैरह अता कर के उन्हें और ख़ुद को ख़ुश रखते हैं । और तालीम के नाम पर लोगों के अन्धेपन का फ़ायदा उठाते हैं और पुश्त-दर-पुश्त के लिये अपना अच्छा इन्तज़ाम कर जाते हैं । आक़बत् (परलोक) अपनी और शागिर्दों की ज़रूर बिगाड़ लेते हैं लेकिन आक़बत् का पता तो आक़बत् को

ही होगा । इतनी दूर की उधार खाते की उम्मीद में फ़ौरी नक़द (तुरन्त नक़द, Ready cash) के हुसुल से वह महरूम क्यों होने लगे ? आक़बत् की ख़बर ख़ुदा जाने ।

मेरा अपना तजुर्बा शाहिद (साक्षी) है कि मेरे समर्थ सद्गुरु एक ऐसा शार्गिद पाने को बेचैन रहे, जो उन का सब कुछ लेकर उनके सिलसिले को फ़रोग (आगे बढ़ावा) दे सके । ज़िन्दगी में ऐसी मुराद का हुसुल बड़ी ख़ुशक़िस्मती की बात होती है और कहीं इसका अहल (पात्र) दस्तयाब (प्राप्त) हो जाये तो उसे बहुत पोशीदा रखकर उसकी ख़सूसी तालीम (विशिष्ट प्रशिक्षण) का एहत्माम (प्रबन्ध) करना होता है । बेशक काम सब समर्थ सद्गुरु का ही होता है । लेकिन बर्तन बनाने के लिये मिट्टी या धातु तो होनी ही चाहिये । हवा और पानी तो घड़ा गढ़ने के लिये काफ़ी नहीं होते । परमात्मा में सभी तरह की ताक़त ज़रूर है, लेकिन उसकी ताक़त पर और उसकी मर्ज़ी पर किसी को अख़्त्यार नहीं, और यह हक़ीक़त है कि अक्सर बड़े आला पैमाने के समर्थ सद्गुरुओं को उनके इल्म पर अख़्त्यार हासिल करके उनके सिलसिले को फ़रोग़ देने की अहलियत के शार्गिद का इन्तज़ार सदियों करना पड़ा है ।

ख़ैर जैसा कुछ भी हो, रुहानियत और ब्रह्म विद्या का इल्म पायदार (टिकाऊ) है और रहेगा । ''वह शमा क्यों बुझे जिसे रोशन ख़ुदा करे ।''

हम सब तो समर्थ सद्गुरु के काम के लिये मुअइयन (नियुक्त) नौकर चाकर ही हैं । इस चाकरी का सिलसिला क़ायम रखना भी उस मालिके-कुल की ज़िम्मेदारी है । हाँ यह ज़रूर है कि वह मालिके-कुल किसी अदना ग़ुलाम को अपने बराबर का दर्जा अता (प्रदान) करके उसे समर्थ सद्गुरु मुअइयन (नियुक्त) कर दे तो यह उसकी शान है । लेकिन इस तरह बादशाह के ज़रिए तख़्तोताज जिसको बख़्शा गया हो उसे अपनी हैसियत चाकर या ग़ुलाम से ज़्यादा कभी न समझना ही उसकी अपनी आन-बान (वज़ादारी, सलीक़ा) है, जिस का मेयार यही है कि रुहानियत के इल्म पर सही मायनों में अख़्तियार और उबूर (Control) हासिल हो और उस सिलसिले को फ़रोग़ देने की अहलियत पैदा हो जो कि समर्थ सद्गुरु की अहमियत और निस्बत की ख़ासियत है । यह बग़ैर पूरी सुपुर्दगी के मुमकिन (सम्भव) नहीं जिसका इन्हसार भी मालिक के तहत है न कि ग़ुलाम के । दूसरे उलूम (विद्याओं) से इस आला इल्म का यही ख़ास फ़र्क़ है ।

❑❑❑

अमर विचार

अब मेरी सेवा का ऐसा रूप है कि (अभ्यासियों के) दिलों में एक आकांक्षा जगाऊँ या उत्पन्न करूँ । इस के लिये इन्तज़ार करो और मैं भी कर रहा हूँ । दिल को दिल से राहत होती है । यदि ध्यान करना अब तक शुरु नहीं किया है तो अब शुरु कर लो । ईश्वर कल्याण करे ! मैं ख़ुद अपने बारे में बताना नहीं चाहता क्योंकि पुराने समय में केवल बताना ही मंसूर को फाँसी के तख़्ते तक ले गया था । अब हालांकि वे दिन नहीं हैं, फिर भी हो सकता है कि जिस निगाह से मैं परखा जा सकता हूँ, उस निगाह को पैदा (विकसित) किये बिना लोग मुझे परखना शुरु कर दें । मुझे उम्मीद है कि ऊपर की बात (कथन) को सावधानी से पढ़ने के बाद अपने दिल के तराज़ू पर मुझे तौलकर हक़ीक़त (सच्चाई) पा जाओगे । जब भी संकल्प (अभिलाषा) की संरचना होती है, कर्म अपने आप शुरु हो जाता है ।

इबादत (प्रार्थना) करो और उसमें इस क़दर डूब जाओ, मानों एक भिखारी अपना प्याला फैलाये हुये है पर भीख से बेख़बर है । यदि ऐसी हालत पैदा कर लो तो इबादत (प्रार्थना) क़बूल (मंज़ूर) होगी और काम जल्द पूरा हो जायेगा । प्यार में सुबकने और रोने की कोशिश करो । यदि असली आँसू न आयें तो बनावटी ही होने दो और फिर नतीजा देखो ।

मुझे इस से बड़ा सुकून मिला कि किसी प्रेमी ने इस नाचीज़ का ख़्याल करना शुरु किया है, क्या यह एक छोटी बात है ? मेरे लिये इससे बढ़कर ख़ुशी की बात क्या हो सकती है कि मिशन की सेवा करने का ख़्याल दिलों में पैदा हो गया है और यह ख़्याल ही रुहानी तरक़्क़ी (आध्यात्मिक प्रगति) को बढ़ाने वाला है । यह कभी नहीं हो सकता कि ठंडी नदी का ख़्याल करो और दिल व दिमाग़ को ठण्डेपन का अहसास (अनुभव) न हो । अब न सही ईश्वर की कृपा द्वारा अहसास (अनुभव) के लिये इतना ख़्याल होना भी काफ़ी है ।

अभ्यास द्वारा जो हासिल करना (पाना) चाहते हो, वह इतना आसान

है, और मैं समझता हूँ कि इससे ज़्यादा आसान और कुछ भी नहीं है । अतः इस मैदान में क़दम तो रखो, जिस से कि मेरा कहना (कथन) साबित (सही) हो सके । किसी अन्य चीज़ के लिये नहीं, तो सिर्फ़ अनुभव के लिये ही इसको (ध्यान को) करो । यदि और कुछ न कर सको तो चलते हुये और आराम करते हुये यह कल्पना करो ''मैं खुद आप के ख़्याल में डूबा हुआ हूँ ।'' इसमें न तो कोई पूजा की विधि है और न ही कोई कर्म काण्डी बन्धन है ।

अभ्यासी— ''कृपा कर कोई ऐसा तरीक़ा (मार्ग) बतायें जिससे कि शरीर के प्रभावों (कर्मों) का असर (संस्कार) दिल पर न पड़े और किस तरह अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करें ?

श्री बाबूजी— यह सभी बातें ध्यान द्वारा आ जाती हैं जिसे मैंने बताया है । मेरा काम तो प्राणाहुति द्वारा ऐसी हालत पैदा करना है । साथ ही, ऐसे कुछ बिन्दु (Points) भी हैं जिन पर यदि ख़्याल डाला जाये (केन्द्रित किया जाये) तो ऐसी हालत को बहुत जल्द पैदा कर सकते हैं । लेकिन अभ्यासी कम से कम मेरी थोड़ी मदद् तो करे जिससे मैं उन तरीक़ों (विधियों) का प्रयोग कर सकूँ । मुझ ग़रीब द्वारा यह भी सम्भव है कि मन और सभी इन्द्रियों को तुरन्त शान्त कर दूँ । लेकिन यह तरीक़ा (विधि) ख़तरनाक है तथा इसका प्रयोग उन्नत साधक में और किसी बहुत ख़ास और विशिष्ट उदाहरण में किया जाता है । इस विधि द्वारा मनुष्य की असलियत (Originality) तुरन्त प्राप्त हो सकती है ।

हज़ारों काबा से एक दिल ही अच्छा है !

□□□

होली

कल होली का दिन है । रंग और गुलाल पाशी की धूम है । खेलने वालों की ख़ुशी तो आज से ही शुरु हो गई होगी । मगर भाई, किन लोगों को ? उनको जिनकी तबियत खेल की तरफ़ मायल (झुकी हुई) है । मगर क्या भाई, यह भी होता है कि दूसरों को या ज़्यादातर जिनका उस तरफ़ झुकाव हो, उनके देखने वालों को भी कुछ रंग सवार होने लगता है । मैं समझता हूँ ऐसा ज़रूर होता होगा । मगर किन लोगों को ? जिनकी तबियत रंग को पहचानती है । अगर हमारी तबियत नहीं पहचानती, तो पहचानने की कोशिश करनी चाहिये । आप कहेंगे कि जिसके आँख है, उसे तो रंग — काला, पीला, नीला वग़ैरा-सब सूझेगा । मैं यह कहूँगा कि जब तक आँख को, काला, पीला, नीला वगैरः जो रंग का रंग है पहचानने की तमीज़ (विवेक) है तब तक उसे रंग की तमीज़ (वास्तविक ज्ञान) नहीं कही जा सकती । तबियत में जब तक रंगीनी है, रंग की क़द्र नहीं होती । अब भाई, होली, मेरी समझ में नहीं आता कि रंग पहचनवाने आती है या वह उसकी सिनअत (कारीगरी) का इज़हार (अभिव्यक्ति) है । इस का फ़ैसला आप ख़ुद करें । मुझ से अगर आप कहें तो मुख़्तसर (संक्षिप्त) जवाब मेरा यह हो सकता है कि रंग खेलते-खेलते इन्सान को बेरंग हो जाना चाहिये । अब अगर कहीं मुझे भी होली का रंग सवार हो जावे, तो नशाबाज़ों की तरह इस का जवाब आधा तीतर और आधा बटेर दूँगा । वह क्या होगा ? -होल (whole) का अर्थ ''कुल'' है, और यह अंग्रेज़ी शब्द है । चूंकि इसमें ''ई'' लगा दी गई, तो फ़ारसी व्याकरण के अनुसार वह ''ई'' निस्बती (सम्बन्धित) कहलाती है । इसका अर्थ यह है कि यदि हम कुल से निस्बत जोड़े हैं तो वाक़ई वही दृश्य हमारे सामने हो जाता है । अतः यह सिद्ध होता है कि यदि हम कहीं कुल से निस्बत रखने लगे, तो हम में रंगीनी उसी कुल के अनुसार निस्बतन ज़रूर रहेगी और कहीं हम निस्बत देते-देते उस से बेख़बर हो गये, तो आप ख़ुद बताइये कि आप की क्या शक्ल हो जावेगी । वही लय-अवस्था, जिस की हम तलाश में हैं । क्या अच्छा हो कि हम होली से यह सबक़ लें ।

क्या आप मुझे यह मौक़ा देंगे कि मैं आपको होली की मुबारकबाद दे सकूँ ? भाई, यह तो होली का मज़ाक था । और मैं करूँ क्या ? मेरा तो जो हाल रहा है, उसकी बू (गन्ध) अब भी बाक़ी है । और वह हाल क्या रहा ? देहाती ज़बान में तो मैं यही कहूँगा -"ठाढ़े, बैठे, पड़े, उताने; जब देखो तब वही ठिकाने" । मतलब ठिकाने से है कि उस चीज़ को भूलना न चाहिये । हमें ठिकाना याद रहे ! और हासिल भी उसी को हुआ है जो अपने ठिकाने पर पहुँचने के लिये दीवाना और मजनूँ बन गया !! इस से अच्छा नुस्खा मुझे और कोई दिखाई नहीं पड़ता जिसने भी तरक़्क़ी की है उसने यही नुस्खा अपनाया है । जिसका जो कोई दीवाना बनता है, मुमकिन ही नहीं कि इसकी दीवानगी उसको सरगदाँ (परेशान) न कर दे । भाई जब दर्द पैदा होगा, तब दवा भी मिल जावेगी । हमें तो दर्द पैदा करना है । सब रियाज़त (मेहनत) और अभ्यास-कोई मुझ से पूछे—तो बस केवल इसी के लिये है । क्या वह दिन आयेगा कि ऐसी दर्दमन्द तबीयतें मेरे भी देखने में आवें । ज़रूर आवेगा । कब ? जब मेरी सी तबियत-यानी जो आप लोगों को स्थितियाँ देने की बेक़रार (आतुर) है-आप लोगों की तबीयत उतनी ही बेक़रार उनको लेने के लिये बन जावे । भाई मेरी मुहब्बत से-मुमकिन है-कुछ यह लाभ निकल आवे कि जैसे मैं अपने मालिक के लिये तड़पा हूँ, वही तड़प आप लोगों में भी पैदा हो जावे ! कहावत मशहूर है-रांड के पांव सुहागिन लागें, होइयो बहाना मुझसी !! मुझ से इस के सिवा मिलता ही क्या ? यह चीज़ मुझसे ले लो और बाक़ी मालिके-कुल (ईश्वर) देगा ।

□□□

इल्म और अमल

इल्म (विद्या) गर्व की वस्तु है किन्तु उस को अपनी हिम्मत बढ़ाने के काम में लाना चाहिये । इल्म बेकार है यदि उसको अमल (अभ्यास) का जामा न पहनाया जाये-

बिसियारिये-इल्म फ़ायदा नेस्त, हरगाह कि दर अमल न यारी ।
चूँ वर न कशी बरुये दुश्मन, बेकार हज़ार तेग़दारी ।

(विद्या का बाहुल्य व्यर्थ है, यदि तू उसे काम में न लाये । जब शत्रुओं के सामने उसे तू बाहर न खींचे तो हज़ार तलवारें रखना व्यर्थ है ।)

मैंने तो भाई अमली-मैदान में आने पर इस चीज़ की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया । वजह यह थी कि मुझे इतनी फ़ुर्सत ही कहाँ थी जो किताबों के पन्नों को चाटना शुरु करता । यदि मेरी एक टाँग कमज़ोर है तो मैं दूसरी टाँग से दोनों का काम ले लेता हूँ । किन्तु केवल इल्म से मतलब रखने वालों की टाँग मज़बूत है परन्तु वह दूसरी को सहारा नहीं देती, अतः लंगड़ेपन का दोष आ जाता है । और यदि यह कहा जाये कि उनके सिर्फ़ एक टाँग है तो बात मज़ाक की हद तक पहुँच जायेगी । यदि स्वयं अमल करने का होश न आये तो मेरे ही होश से काम लिया जा सकता है, जिसके लिये लगाव की ज़रूरत है । ख़्याल में जिस से लगाव पैदा होता है, उसी में यदि इन्सान जज़्बा (भावना) पैदा कर ले तो प्रेम भी शुरु हो जाता है । भक्ति वालों से यह चीज़ अपनी असली हालत में सीखना चाहिये और उसमें से जौहर (असल तत्व) निकाल लेना चाहिये । हमें तो एक बच्चे से भी एक उम्दा बात मिल सके तो ग्रहण कर लेना चाहिये । लाभदायक विधियाँ बहुत सी हैं, किन्तु लोग उनको दो-दो चार-चार रोज़ करके छोड़ देते हैं । किसी एक को पकड़कर बैठ जायें और फिर मज़ा देखें । एक क़ातिल अपने बचने की तरकीब ख़ुद ढूंड लेता है, पूछता नहीं फिरता, इसलिये कि कहीं ऐसा न हो कि उसके बचाव की तरकीबें खुल जावें । एक अपराधी यही प्रयत्न करता है कि अपने अपराध को कैसे छिपाये । चीज़ बुरी है या अच्छी इससे

मतलब नहीं, मतलब इससे है कि अपने बचाव में ख़ुद उसका हिस्सा होता है ।

अतः लोगों को चाहिये कि ख़ुद ग़ौर करें । नुस्ख़ा क़रीब ही मिलेगा । मगर जब तक तबियत में घाव नहीं लगता दूसरे को मरहम की फ़िक्र नहीं होगी ।

इल्म वह है जो ईश्वर की पहचान कराये । वह इल्म किस काम का जो ईश्वर से दूर कर दे । मैं तो भाई उसको 'एलम' ही कहूँगा । यह शब्द वास्तव में ग़लत है और इस को निरक्षर और बाज़ीगर लोग इस्तेमाल करते हैं । जन्तर-मन्तर वाले तो जाहिल होते हैं "इल्म" कहने के बजाय "एलम" कहते हैं । अतः दूसरों को धोखा देने में या अपने आप को धोखा देने में या अपने आप को पुजवाने में या ऐसा उपदेश देने में जिसका ख़ुद अभ्यास न किया जावे, इत्यादि-इस कला को मैंने "एलम" कहा है । और आलिम-बेअमल-क़ाबिल-बे-क़बूल(१), गन्दुम-नुमा जौ-फ़रोश(२)— सब 'एलम' ही जानते हैं 'इल्म' नहीं जानते हैं । वह इल्म किस काम का जो ईश्वर को पहचानने की ओर प्रेरित न करे । यूँ चीख़-पुकार तो सियार भी कर लेते हैं और मुर्ग़ भी सवेरे बांग दे लेता है ।

धार्मिक इल्म से मैं परिचित नहीं यद्यपि यह भी एक साल में पढ़कर सीखा जा सकता है । मगर साथ ही ख़्याल यह भी है कि इतना समय आप लोगों की उपज में और अपना कर्तव्य पूरा करने में क्यों न लगा दूँ, जिससे ईश्वर भी ख़ुश हो । और भाई सच तो यह है कि मैंने अपने आप को इतना गिरा दिया कि आलिम मुझे जाहिल समझने लगे और ख़ामख़ाह मैं इल्म की कमी अपने में महसूस करने लगा । वजह इसकी यह भी हो सकती है कि दूसरों को इस तरह बड़ाई देना और ख़ुश रखना था । वरना यह भी कहा जा सकता है कि मुझ में इल्म की कमी नहीं क्योंकि गुरु महाराज ने अपना इल्म भी मुझे Transmit किया है और उन्हीं के नाम पर किसी को भी किया जा सकता है । हाँ, पारिभाषिक शब्द मुमकिन है कि न हो । बात बड़ी होगी और ऐसा मुझे कहना भी नहीं चाहिये । किन्तु किसी कारण लिखना आवश्यक है कि लोग वेद मुझसे पढ़ें और सीखें । तब मेरे गुरु महाराज का पता चलेगा कि वे क्या नहीं कर सकते थे ।

कीड़ों ने हज़ारहा किताबें खालीं,
पाई न मगर फ़ज़ीलत की सनद ।

कई रोज़ से मैं लिख रहा हूँ इसलिये कि भूले भटके मुसाफ़िर को यह चिराग़ का काम करे । नतीजा ईश्वर के हाथ में है, लिखे तो मैं जाता ही हूँ । मैंने कभी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश नहीं की, मैंने तो तमाम उम्र अपने गुरु महाराज को पहचानने की कोशिश की है—इसलिये सम्भव है कि ज्ञानी लोगों को या विद्वानों को यह बात पसन्द न आये । मगर भाई हक़ीक़त (असलियत) से मैं एक क्षण भी नहीं हटता और न मेरी तहरीर (लेख) उससे खाली होती है । किसी को आख़िरत (अन्तिम लक्ष्य) की फ़िक्र है और मुझे इस बात की फ़िक्र है कि मेरे पास जो कुछ भी है वह सब का सब कोई ले लेवे । यदि कोई ऐसा करने पर उतारू हो जाये तो मैं समझूँगा कि मैं बख़्श दिया गया, इस लिये कि ऐसी हालत में बहुत कुछ गुरु ऋण से उद्धार हो सकूँगा । बिल्कुल अपना सा बनाने के लिये मुझमें क़ाबलियत कहाँ और मुमकिन है बन भी न सके । यह क़ाबलियत तो सिर्फ़ मेरे गुरु महाराज में है । किन्तु साथ-ही-साथ मैं यह ज़रूर चाहता हूँ कि कोई ऐसा मिल जाये कि जिससे अपने दिल के वलवले निकाल सकूँ । ईश्वर देगा, उम्मीद ज़रूर है ।

एक बात बड़े काम की यह है कि दुनिया में जितनी तरक़्क़ी हुई है निरीक्षण की शक्ति (Power of observation) से हुई है । अतः इस अध्यात्म विद्या में भी जितनी ही निरीक्षण-शक्ति अभ्यासी बढ़ाता जायेगा, उतना ही कुदरत का इल्म उसको प्राप्त होगा । और मुझे मज़ा भी ऐसे ही आदमी की तालीम में आता है । अब इसका तरीक़ा क्या है ? यह पढ़े-लिखे लोग सब जानते हैं, किन्तु जब मैं किसी से कहता हूँ कि निरीक्षण और अनुभव की शक्ति बढ़ाओ तो वह यही कहता है कि कोशिश करता हूँ मगर अनुभव नहीं होता । मेरी समझ में नहीं आता कि वह कोशिश कैसी जिससे इच्छित परिणाम की प्राप्ति न हो । हम जब अपने घर के मामले में सोचते हैं तो उसकी छोटी से छोटी बातें ख़ूब समझ में आ जाती हैं । बात क्या है कि उसमें हम पूर्ण रूप से लग जाते हैं, यहाँ तक कि जब तक उसका हल नहीं मिल जाता, हमको चैन नहीं पड़ता, इसलिये कि वह चुभन दिल में होती है । अभ्यासी जब अपनी हालत नज़र में रक्खे और देखे तो मुमकिन ही नहीं कि पढ़े-लिखे आदमी की समझ में न आ जावे । हर हालत पर अगर एकाग्र चित्त होकर साथ-ही-साथ अमल भी करता चले तो मुमकिन ही नहीं कि निरीक्षण अनुभव न करा दे । मगर भाई, यह सब बातें शौक़ पर निर्भर करती हैं ।

फ़ासला कूचा-ए-जानाँ का न मुझसे पूछो,
जैसे मुश्ताक़ हो नज़दीक भी है दूर भी है ।

(प्रियतम की गली की दूरी की बात मुझसे न पूछो जिसमें जितना शौक़ है उसी अनुसार निकट भी है, दूर भी है) ।

(१) यह वाक्यांश मेरा गढ़ा हुआ है । इसका अर्थ-एक विद्वान और होशियार व्यक्ति है किन्तु ईश्वर ने जिसको स्वीकार नहीं किया है ।

(२) गेहूँ दिखलाकर जौ बेचनेवाला मिथ्याचारी ।

(एक अभ्यासी के पत्र से)

❑❑❑